।।ओ३म्।।

पाक्षिक

परोपकारी

• वर्ष ६० • अंक २३ • मूल्य ₹१५ महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा का मुखपत्र • दिसम्बर (प्रथम) २०१८

महर्षि दयानन्द सरस्वती

ऋषि मेले के अवसर पर डॉ. विनय विद्यालंकार के ब्रह्मत्व में एवं साधु-संतों की गरिमामयी उपस्थिति में ऋग्वेद परायण यज्ञ का आयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० अंक : २३

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: मार्गशीर्ष कृष्ण २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।*

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

दिसम्बर प्रथम २०१८

अनुक्रम

०१. आर्यसमाज और वर्तमान की...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-१९	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. सत्य तथा उसके अवरोधक	इन्द्रजित् देव	१५
०५. स्त्री शिक्षा	आ. उदयवीर शास्त्री	२०
०६. सप्त सिन्धु सूक्त	बुद्धदेव विद्यालंकार	२३
०७. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२५
०८. संस्था समाचार		२६
०९. आत्म-दर्शन की प्यास किसे?	स्वामी सत्यव्रतानन्द	२९
१०. पाठकों के विचार		३५
११. शङ्का समाधान- ३८	डॉ. वेदपाल	३६
१२. योगदर्शनकार पतञ्जलि के....	महावीर मीमांसक	३७
१३. ऋषि मेला-एक रिपोर्ट		३९

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

आर्यसमाज और वर्तमान की चुनौतियाँ

महर्षि ने आर्यसमाज के नियमों में लिखा कि "**सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।**" इसका भाव अत्यन्त व्यापक है तथा पारिवारिक, संगठनात्मक तथा राष्ट्रीय एकता व उन्नति के लिए आवश्यक भी। इस भाव को विचारपूर्वक दृढ़ करने तथा आचरण में लाने पर व्यक्ति उदार होता है, ईर्ष्या-द्वेष से दूर हटता है एवं पाप का भागी होने से भी बचता है। संस्थागत कार्य करने पर कार्यकर्त्ता को इस नियम पर विशेष रूप से विचार करना एवं पालन करना चाहिए। जब यह भावना दृढ़ होती है, तो व्यक्ति सामाजिकों के स्वर से स्वर मिलाकर चलना चाहता है, व्यक्ति हानि-लाभ और ईर्ष्या-द्वेष को छोड़कर संस्था को उन्नति के शिखर तक ले जाने में सहयोग करना चाहता है और इसके विपरीत विचार रखने एवं तदनुसार कर्म करने पर वह संस्था के नाश के उपाय करता है और संस्था, समाज व राष्ट्र के द्रोह का भागी बनता है। आर्यसमाज में दुर्भाग्य से ऐसे अनेक जन हुए जिन्होंने संस्था पर व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ थोपकर उसे निष्प्रभावी बनाने का प्रयत्न किया।

आज आर्यजगत् सांगठनिक एकता की समस्या से जूझ रहा है। वैदिक संस्कृति के सिद्धान्तों का संवाहक, अपने आदर्श पुरुषों की चारित्रिक सम्पदा से समृद्ध, विपक्षियों को शास्त्रार्थ-समर में सदैव धूल चटाने वाला, महर्षि के तर्क-तूणीर से सुसज्जित धर्म-धनुर्धारी आर्यसमाज आज अन्धविश्वास, अनैतिकता, अन्याय और अधर्म का उत्तर देने के लिए मंच खोजता फिर रहा है। मूर्ख, धूर्त और अज्ञानीजन संचार-माध्यमों के अधिपति हो चुके हैं। छल-कपट, भ्रम, अधर्म और अज्ञान का प्रचार आज संस्थागत रूप में हो रहा है। इस सबका स्पष्ट कारण है कि हमने **'संगच्छध्वं संवदध्वं'** का मंत्र नहीं सीखा और महर्षि के सांगठनिक सूत्रों की उपेक्षा करके अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और स्वेच्छाचारिता को प्राथमिकता देना प्रारम्भ कर दी। आर्यों के संगठन में ऐसी अपार शक्ति सन्निहित हो सकती है, जो आधुनिक संसाधनों का उपयोग कर संसार का नक्शा बदल सकती है, तो संभवतः हम महर्षि के उपदेशों और संदेशों को सही अर्थों में ग्रहण करने के योग्य हो सकते हैं, अन्यथा हम विनाश को निमन्त्रण ही दे रहे होंगे और ऋषि-द्रोह का पातक भी हमें लगेगा।

१९वीं शताब्दी में महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज की स्थापना तत्कालीन स्थिति में भारतीय संस्कृति अथवा आदर्श वैदिक संस्कृति के विरुद्ध होने वाले सभी आक्रमणों का समाधान करने का भी एक स्तुत्य प्रयास था। महर्षि ने अपने आदिम सत्यार्थ-प्रकाश में स्पष्ट रूप से लिखा है कि "**सिवाय विद्या के मनुष्यों को सुधारने का कोई प्रकार मुझ को नहीं दिखता, क्योंकि दण्ड और लोभ से मनुष्य का हृदय और जीव की पवित्रता कभी नहीं हो सकती, इससे मैं चाहता हूँ कि सनातन संस्कृत सत्यविद्या का अवश्य प्रचार होना चाहिये, परन्तु मेरे जीते जी जो प्रचार होये तो शीघ्र थोड़ा पुरुषार्थ और थोड़ा धन से भी मैं करा सकता हूँ, फिर उसका प्रचार होना बहुत कठिन होगा और न होये तो भी आश्चर्य नहीं।**"

यह भाव आर्यसमाज के संगठन के विषय में भी था, क्योंकि आर्यावर्त देशवासियों में परस्पर विद्वेष के कारण ही वेद के विरुद्ध जब भारतीयों का आचरण होने लगा तब ही भारत का पतन हुआ। परस्पर प्रीतिपूर्वक विचार-विमर्श के बाद निर्णय लिया जाकर जब उसका अनुसरण किया जाता है तब ही समाज में स्नेह और प्रेम का संचार होता हैं। महर्षि दयानन्द ने सर्वप्रथम सामाजिक संस्थाओं के प्रति जनतांत्रिक पद्धति को स्वीकार किया। जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि **सभी मनुष्य बैठ-मिलकर निर्णय लें और यह निर्णय सर्वसम्मति से हो, यदि न हो पाये तो बहुमत से लिया जाए। महर्षि दयानन्द लोकतंत्र के प्रति इतने समर्पित थे कि उन्होंने परोपकारिणी सभा के स्वीकार्य पत्र में भी इसे स्वीकार किया।**

आर्यसमाज की स्थापना से ही वैयक्तिक विचार-चिन्तन के आधार पर विभिन्न मतभेद होते रहे हैं और यह इसलिए कि मनुष्य चिंतनशील प्राणी है, उसका चिंतन उसके सामाजिक और वैचारिक परिवेश से उपजता है।

सारे मनुष्य कुम्हार के सांचे के अनुसार एक-से नहीं हैं, सभी की आत्मायें भिन्न-भिन्न हैं और इसलिए उनकी क्षमताएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। अत: आर्यसमाज में वैयक्तिक मत-वैभिन्न को आर्यसमाज की एकता के विरुद्ध मानकर चीत्कार करने वाले सज्जनों को यह विचार करना चाहिए कि आर्यों का उद्देश्य वैदिक चिन्तन ही है, जिसके लिए आर्यसमाज के दस नियम हैं। वस्तुत: यह दसों नियम मनुष्य के स्वयं तथा समाज, राष्ट्र और विश्व के कल्याण के लिए हैं। हमारा ध्येय इन्हीं उद्देश्यों की पालना में निहित है। इसके साधनों या क्रियान्विति में मतभेद हो सकता है, लेकिन उद्देश्यों में अभी तक आर्यों में कोई मतभेद दृष्टिगोचर प्रतीत नहीं होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन दिल्ली के अवसर पर भव्य समारोह का आयोजन आर्यों की एकता, उनकी विचारशक्ति, उनकी ध्येयनिष्ठता तथा बहुआयामी चिंतन का सशक्त उदाहरण है। यह आर्यजनों के लिए गर्व का विषय था। अत्यन्त सफल आयोजन आर्यसमाज के समक्ष आई हुई समकालीन चुनौतियों का सामना करने का एक संकेत मात्र है, जिससे अवैदिक मतावलम्बियों में निश्चय ही चिंता हुई होगी। इस सम्मेलन के साफल्य के लिए सभी आयोजक अभिनन्दन के पात्र हैं।

लेकिन इन अवसर पर बहुत से आर्यजनों की चिंतायें भी देखी गईं। चिंताओं का कारण असत्य के आधार पर निर्मित की गई वह अवधारणा है जो पूर्वाग्रह से सिंचित होती है। वर्तमान में सोशल मीडिया के कारण जिस भ्रम और अविद्या के सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार विश्व में दृष्टिगोचर हो रहा है, वही आर्यसमाज की संस्थाओं के संबंध में भी देखा जा रहा है। सुधीजनों को चाहिए कि वे अफवाहों, अवैदिक मान्यताओं, दुराग्रहों को त्याग कर अन्त:करण की निश्छलता के साथ यथार्थ को सहने और सुनने का सामर्थ्य रखें। इतिहास साक्षी है कि स्वामी श्रद्धानन्द और लाला लाजपतराय के मध्य गहरे मतभेद थे और यह मतभेद शिक्षा की पद्धति, उद्देश्य और साधनों से संबंधित थे, व्यक्तिगत नहीं । इस विषय पर सभी आर्यजनों को विदित है कि बहुत विवाद हुआ, लेकिन गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना हुई और गुरुकुलीय शिक्षा का प्रचार और प्रसार हुआ, तो दूसरी ओर डीएवी शिक्षण संस्थाओं का संपूर्ण भारत में जाल बिछ गया। हो सकता है कि आर्यसमाज के लक्ष्यों को पूरा करने में इन संस्थाओं में कोई कमी रह गई हो, लेकिन उनके संकल्प, उनकी प्रेरणा, उनका ध्येय और इन संस्थाओं से निकलने वाले छात्रों की योग्यता पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता।

सृजनशील मन प्रक्रियाओं के माध्यम पर तो मतभेद कर सकता है, लेकिन उद्देश्यों की पूर्णता के विषय में कैसा मतभेद? कैसा द्वेष? कैसी ईर्ष्या? बहुधा मतभेद का अभिप्राय संस्था के विरुद्ध असत्य प्रलाप देखा जाता है। जहाँ तक संस्थाओं के प्रकल्पों और संस्था में सहयोग करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध दुष्प्रचार करना है, हम समझते हैं कि यह उचित नहीं है। यह आर्ष परम्परा नहीं है, आर्ष परम्परा में यदि बहुमत से विचार-विमर्श के बाद कोई निर्णय लिया गया है तो सभी को उस निर्णय का सम्मान करना चाहिए। उसका परिणाम देखने का धैर्य रखना चाहिए न कि संस्था को हानि पहुँचाकर अपनी अवधारणा के विरुद्ध सामूहिक निर्णय को चुनौती देना। जब हम वेद को ज्ञान की स्वर्णिम कुंजी मानते हैं और आर्य विचारों के प्रति सर्वस्व न्यौछावर करने का भाव मन में रखते हैं, तब फिर विरोध की आग में जलते हुए अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मारना कहाँ तक ठीक होगा? महर्षि ने कहा है कि धर्म का रक्षक विद्या ही है, क्योंकि विद्या से ही धर्म और अधर्म का बोध होता है। उनसे सब मनुष्यों को हित और अहित का बोध होता है, अन्यथा नहीं।

आर्यसमाजो में जिस प्रकार अभी विभिन्न स्तरों पर न्यायालय में केस चल रहे हैं। छोटे-छोटे विषयों पर आक्रोश या स्वार्थ में परस्पर प्रीति को त्याग दिया जाता है और हम एक-दूसरे के प्रति किस प्रकार विद्वेष से भरकर व्यक्तिगत धरातल पर आकर मतैक्य न रखने वाले का अपमान करते हैं; यह अनेकत्र दिखाई देता है। यही नहीं, बहुत दूर तक जाकर कथित विरोधियों के प्रति दुर्भावनावश अनर्गल प्रलाप कर, भ्रम पैदा कर किया जाता है, सबसे बड़ी चुनौती आर्यसमाज के समक्ष इसी की है।

संगठन सूक्तों में जिस प्रकार परस्पर बैठकर मन और विचारों को एक कर लक्ष्य साधने का संदेश वेदों से मिला

है, वह व्यावहारिक जीवन में तिरोहित होता प्रतीत होता है। संस्था के उपनियम ३९ में यही उल्लिखित हुआ है। आर्य संस्कार, आर्य मर्यादाएँ, आर्य विचार व्यक्ति को इस तथ्य की ओर प्रेरित करते हैं कि व्यक्ति परस्पर स्वार्थों से दूर हटकर सहनशील होता हुआ कर्त्तव्यों के निर्धारण में परस्पर सहयोग प्रदान करे, न कि अपनी ही संस्था की हानि करने के लिए भ्रामक, मिथ्या और प्रचार का सहारा ले।

हम अवैदिक मतों से संघर्ष करने में बहुत प्रवीण हैं। विश्व की कोई सत्ता आर्यसमाज को इस आधार पर चुनौती नहीं दे सकती, यह सत्य है। लेकिन जब संस्था के संगठन से ही स्वार्थ या द्वेष के कारण विसंगति के स्वर उभरने लगते हैं, और संस्था के संविधान की अवहेलना की जाती है तो संस्था का ऐक्य तिरोहित हो जाता है।

आज आर्यसमाज को बाहर से नहीं, अन्दर से चुनौती है। महर्षि ने इसीलिए कहा था कि निरन्तर स्वाध्याय होते रहना चाहिए, इससे मन निर्मल होता है। हमें अवैदिक विचार और आचरण घेर नहीं सकते। जो आर्य सिद्धान्तों पर दृढ़ हैं, उनके लिए खुला जगत् है। संस्थाओं पर अधिकार, अपनी मनमानी करने का विचार, अपने मन के विरुद्ध कोई भी विचार न सुनने की प्रवृत्ति इत्यादि दुष्प्रवृत्तियाँ हमारी बड़ी चुनौतियाँ हैं। बहुत से वैदिक विचार हैं जहाँ विद्वानों में मतभेद है और प्राचीनकाल से है। विभिन्न वैचारिक आंदोलन इसी की उपज हैं, लेकिन क्या किसी वैचारिक आंदोलन ने मानव के कल्याण व उन्नति के विरुद्ध प्रत्यक्षतः कार्य करने का प्रयास किया है? भले ही उसका सुख चार्वाक का हो या वैदिक धर्म का। यही तो भिन्नता है, लेकिन जब मनुष्य ही अशांत होगा तो उसके कल्याण की कामना कैसे होगी? ज्ञानी होने के साथ-साथ सदाचरणपूर्वक सबके सहयोग एवं कल्याण की भावना से कर्म करने चाहिए। वेद कहता है-

यश्चिकेत स सुक्रतु देवत्रा स ब्रवीतु नः।।ऋग्वेद।।

(ज्ञानवान् होने के साथ-साथ उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म करने वाला ही हम विद्याभिलाषियों को उपदेश करने योग्य होवे।)

- दिनेश

अपील

'सत्यार्थप्रकाश' जैसी क्रान्तिकारी पुस्तक के प्रति किस आर्य की श्रद्धा नहीं होगी और कौन वैदिकधर्मी यह नहीं चाहेगा कि यह पुस्तक हर मनुष्य के हाथ में होनी चाहिये? आर्यों की इस तीव्र अभिलाषा को परोपकारिणी सभा गत ५ वर्षों से साकार रूप देने में प्रयासरत है। साथ में यह भी चाहती है कि यह अमूल्य पुस्तक आकार-प्रकार में भी आकर्षक ही हो। इन सबको ध्यान में रखकर सभा ने विश्व पुस्तक मेले में इसे ऐसे व्यक्तियों में वितरित करने का निश्चय किया जिन तक यह अभी नहीं पहुँच पाई थी। इस कार्य में परोपकारिणी सभा तो एक माध्यम मात्र है, मुख्य वितरक आर्यजन ही हैं। विश्व पुस्तक मेला- २०१९ का कुछ ही समय शेष है। अतः आर्यों से अपील है कि अधिक से अधिक लोगों तक सत्यार्थ पहुँचे, इसके लिये मुक्त हस्त से सहयोग करें। सत्यार्थप्रकाश के साथ-साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र भी निःशुल्क वितरित किया जायेगा। आप जितनी प्रतियाँ अपनी ओर से बंटवाना चाहें, उतनीं पुस्तकों पर आपका नाम छापा जायेगा।

एक प्रति की लागत- १००रु.

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

मृत्यु सूक्त-१९

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां, यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि, मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्।।

हम इस वेद-ज्ञान की चर्चा में ऋग्वेद के दशम मंडल के १८ वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। हमने देखा था कि मृत्यु केवल मृत्यु नहीं है बल्कि मृत्यु पुनर्जन्म का कारण है। **हमारी मृत्यु कैसी हो जिससे हमारा अगला जन्म सुख देने वाला हो और दुःखों से छुड़ाने वाला हो?** हमने देखा था कि **यदि हमारे जीवन में शुभ-अशुभ कर्मों का जो परिणाम है वो सम है तो हमें मनुष्य जन्म की, मनुष्य जीवन की प्राप्ति होती है।**

संसार के जितने भी प्राणी हैं वे सब के सब भोग योनि में आते हैं और इनके भोग योनि में होने का जो सबसे बड़ा प्रमाण है, वो हमारे कर्मों की विविधता है। क्योंकि ये जितने भिन्न-भिन्न प्राणी हैं, भिन्न-भिन्न शरीरों में हैं इनके सुख-दुःख की मात्रा, गुण-दोष भी भिन्न-भिन्न हैं। उसी तरह के जीवन को उन्होंने प्राप्त किया है, जिस तरह का उनका भोग है, जिस तरह के उनके पिछले जन्म के कर्म हैं। इससे यह पता लगता है कि यह मनुष्य कितनी तरह के कर्म करता है। कर्म करने में मनुष्य स्वतन्त्र है और फल भोगने में परतन्त्र है, यह एक सिद्धान्त निकलकर आता है, क्योंकि जो कठिन या घृणित जीवन है वो कोई मनुष्य नहीं चाहता, लेकिन संसार में असंख्य जीव हैं और अनन्त कष्ट भोग रहे हैं, अनन्त दुःख पा रहे हैं। कोई भी प्राणी अपनी इच्छा से दुःख नहीं पाना चाहता और दुःख मिल रहा है तो इसका अभिप्राय है कि वो किसी व्यवस्था के कारण बँधा हुआ है, किसी व्यवस्था से जकड़ा हुआ वह उस परिस्थिति में गया है। मुझे जो फल मिला, वह मेरी इच्छा से, मेरी अनुकूलता से नहीं मिला। मैं कर्म अब करता हूँ, लेकिन उसका फल मुझे तत्काल नहीं मिलता, कालान्तर में मिलता है या किसी और जन्म में मिलता है। ऐसी परिस्थिति में मुझे यह पता लगता है कि मैं पशु-पक्षियों की योनियों में कर्म नहीं कर सकता। क्योंकि तब मेरे पास कर्म करने की कोई स्वतन्त्रता नहीं है।

इसके कारण एक लाभ क्या है कि उस जन्म में मेरा किया हुआ कोई भी कर्म मुझे पाप या पुण्य नहीं देता। यदि बिच्छु ने काटा है तो आप यह नहीं कह सकते कि बिच्छु को पाप लगेगा। शेर ने यदि किसी जानवर को, व्यक्ति को मारा है तो आप यह नहीं कह सकते कि शेर को मांस खाने का, हिंसा करने का पाप लगेगा, क्योंकि शेर जिस परिस्थिति में है वह उसकी बनाई हुई नहीं है। उसका शरीर उसका बनाया हुआ नहीं है, उसका भोजन भी उसका बनाया हुआ नहीं है। इस शरीर के लिए जो भोजन चाहिए, जो संसार में है, उसके लिए वह उत्तरदायी नहीं है। जितनी भोग योनियाँ हैं, उनमें वो जो कुछ भी कर रहे हैं उसमें उन प्राणियों की अपनी इच्छा, अपनी स्वतन्त्रता, अपना विवेक, कुछ भी नहीं है। उनको परमेश्वर ने जीवित रहने का जो अधिकार दिया है उसके लिए उतने उचित साधन दिए हैं और संसार में जैसी वस्तुऐं दी हैं, वो यथासंभव उनका उपयोग करते हैं, दिनभर खाने-रहने का ही उनका उद्देश्य रहता है, इस जीवन को बनाए रखने का यत्न ही वो करते रहते हैं। वो स्वतन्त्रता से कोई काम, अच्छा समझकर या बुरा समझकर नहीं करते, वो उनकी बाध्यता से करते हैं। कोई पशु कुछ खाता है तो उस श्रेणी के सारे पशु वही खाते हैं।

कोई पशु शाकाहारी है, तो शाकाहारी है, कोई पशु मांसाहारी है तो मांसाहारी है, उसके सामने कोई विवेक नहीं है कि उसे मांस खाना चाहिए कि नहीं खाना चाहिए, शाकाहारी होना चाहिए कि नहीं होना चाहिए। वो मांसाहारी है तो उसका शरीर मांसाहारी प्राणियों के जैसा बना हुआ है और शाकाहारी है तो प्राणी का शरीर शाकाहारी जैसा बना हुआ है। इसलिए वो इसके प्रति उत्तरदायी नहीं है। पाप-पुण्य किसी पशु-पक्षी को नहीं लगता, कीट-पतंग को नहीं लगता, मनुष्य से भिन्न किसी भी प्राणि को नहीं

लगता। पाप और पुण्य केवल मनुष्य को लगता है, क्योंकि इसके पास विकल्प है। अच्छा और बुरा, कम या अधिक तभी होता है जब हमारे पास विकल्प हो। हमारे पास विकल्प ही न हो तो कम मिला तो क्या, ज्यादा मिला तो क्या, अच्छा मिला तो क्या, बुरा मिला तो क्या? वहाँ तो विकल्प ही नहीं है तो उसका फल कुछ नहीं है। वो तो अनिवार्य संबन्ध है, उतना ही होना है। तो मनुष्य को बुरा क्यों लगता है, अच्छा क्यों लगता है पाप क्यों लगता है, मनुष्य को पुण्य क्यों लगता है, मनुष्य को सुख क्यों होता है, दु:ख क्यों होता है? इसके पीछे, इसके पास जो स्वतन्त्रता है, इसका जो विवेक का अधिकार है, अच्छे-बुरे की पहचान करने के लिए बुद्धि की क्षमता है, यह इसका मूल कारण है। यह कुछ नया भी उपार्जित कर सकता है और यह जो नया उपार्जित करता है अनिवार्य नहीं है कि वो अच्छा हो या बुरा हो, इसकी इच्छा है, वो इसकी स्वतन्त्रता है।

जो लोग यह मानते हैं कि "भगवान् की इच्छा से हम करते हैं" उनको यह भी मानना होगा कि फिर इसके फल का उत्तरदायी मनुष्य नहीं होगा। इसके फल का उत्तरदायी तो फिर वही होगा जो करने के लिए मजबूर कर रहा है, विवश कर रहा है। लेकिन यदि मनुष्य ने अपनी स्वतन्त्रता से किया है, अपनी इच्छा से किया है, वो करने, न करने में स्वतन्त्र है तो फल तो उसके अनुसार मिलेगा। कर्म करने की स्वतन्त्रता तो उसके हाथ में है, लेकिन उसको फल प्राप्त करने की स्वतन्त्रता नहीं हैं, ऐसा क्यों? यदि उसने किया है तो उसका फल पाने की स्वतन्त्रता भी होनी चाहिये।

स्वतन्त्रता होती तो दो कारण होते-वह फल को स्वीकार करे या अस्वीकार करे और दुनिया में कोई भी मनुष्य अनुचित काम करने के बाद जो दु:ख रूप फल होगा, उसे क्यों स्वीकार करना चाहेगा और यदि इसमें परिवर्तन हो सकता तो किसी के सुख को कोई दूसरा ले सकता था। लेकिन व्यवस्था यह कहती है कि जो जिसका है वो उसको ही मिलेगा, जितना है उतना ही मिलेगा, जैसा है वैसा ही मिलेगा, तो ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने आप ही दु:ख का काम नहीं करना चाहेगा। दु:ख का काम करके दु:ख का फल नहीं पाना चाहेगा। इसलिए यहाँ स्वतन्त्रता तो है करने की, लेकिन उसका जो परिणाम है, फल है उसकी स्वतन्त्रता मनुष्य के पास नहीं है। इसलिए मनुष्य न चाहते हुए भी दु:खों का भोग करता है, बुरे कर्मों का फल पाता है। यह अनिवार्य है, इससे उसका छुटकारा नहीं है। इससे पता लगता है कि मनुष्य अपने किए हुए कर्म के अनुसार ही जन्म पा रहा है।

मनुष्य इस मृत्यु को देखकर, मृत्यु के समय की परिस्थिति को देखकर यह सीखता है, यह सीख सकता है कि वह परिस्थिति सुखद कैसे बने? '**प्रयाणान्तम् ओंकारम् अभिध्यायैत**'-जो मनुष्य मरते समय में परमेश्वर का स्मरण करता है उसकी मृत्यु सुखद होती है, उसका अगला जन्म श्रेष्ठ होता है। लेकिन यह जो परिस्थिति है, यह आ कैसे सकती है? मनुष्य जीवन भर जिस काम को करता है उसके ही संस्कार उसके पास रहते हैं, वही परिस्थितियाँ उसके मस्तिष्क में बनी रहती हैं, इसीलिए मनुष्य यदि चाहे भी कि जीवन भर तो वह कुछ भी करता रहे और मृत्यु के समय में वह अच्छा विचार करे, अच्छा वचन बोले, अच्छा काम करे, यह संभव नहीं होता, क्योंकि संस्कारों की जो प्रबलता है उस समय निर्णय की स्थिति में आती है और वो निर्णय मनुष्य के अगले जन्म का दृश्य है, तो जब मुझे अगला जन्म श्रेष्ठ जन्म नहीं मिलना है तो मैं कितना भी चाह करके अन्तिम समय में अच्छी बात स्मरण करूँ, अच्छी बात बोलूँ यह संभव नहीं है, क्योंकि मेरे साथ जो न्याय किया जा रहा है, मुझे अपने कर्मों का जो फल दिया जा रहा है वो फल उस समय मेरे सामने है कि मैंने क्या-क्या बुरा किया है, क्या-क्या दु:ख का कारण है मुझे उसकी प्राप्ति होनी है। ऐसी स्थिति में मैं उसको हटा नहीं सकता, उसका विकल्प नहीं दे सकता। तो यह जो सिद्धान्त है हमारे पास पुनर्जन्म का इसके कारण से मृत्यु बहुत सरल हो जाती है, जानने की दृष्टि से भी और अनुभव करने की दृष्टि से भी।

पहली बात यह है कि मृत्यु को हम भले ही कितना भी दु:ख समझें लेकिन मृत्यु वर्तमान के दु:खों से छुटकारे का नाम भी है। हमारा जो वर्तमान शरीर है, जो साधन है, जो परिस्थिति है, जो संबन्ध है वो सब कुछ मृत्यु के साथ

एकदम छूट जाते हैं। मृत्यु के साथ शरीर छूट जाता है, शरीर छूटते ही संबन्ध छूट जाते हैं, शरीर छूटते ही इस शरीर से जुड़े हुए हानि-लाभ छूट जाते हैं, इस शरीर से जुड़े हुए सुख-दु:ख भी छूट जाते हैं और वह बिल्कुल एक नयी परिस्थिति में चला जाता है। इसलिए **यदि हमको इस मृत्यु का भली प्रकार से बोध हो जाए तो यह हमारे लिए दु:ख का कारण न हो करके हमारे विवेक का कारण हो जाए और हमारे अच्छे का कारण बन जाए।**

हमारा मृत्यु का सिद्धान्त हमारे कर्मफल के सिद्धान्त को प्रकट करता है, हमारे कर्मफल के सिद्धान्त को प्रकाशित करता है, प्रतिपादित करता है। इस पुनर्जन्म के कारण से मनुष्य संसार के सुख-दु:खों को देखकर अच्छे कार्यों को करने की प्रेरणा लेता है और बुरे कार्यों को करने से बचता है क्योंकि वह संसार में देख रहा है कि उसमें बहुत सारे लोग बहुत सहज हैं बहुत सामान्य हैं, बड़े सुखी हैं-कोई अपने संबन्धों से सुखी है, कोई अपने साधनों से सुखी है, कोई अपने शरीर के स्वास्थ्य से सुखी है, कोई अपनी मन:स्थिति से सुखी है और इसके विपरीत कोई दु:खी है। कोई सब कुछ होते हुए भी मन:स्थिति से दु:खी है, कोई अच्छी व्यवस्था होने पर भी शरीर से दु:खी है, कोई संबन्धों से दु:खी है, कोई साधनों के अभाव से दु:खी है, साधन होने पर भी उपयोग करने की क्षमता न होने से दु:खी है। तो यह विविधता, यह भिन्नता हमको कुछ सिखाती है, प्रेरणा देती है और क्योंकि दोनों तरह के लोग हमको संसार में देखने में आते हैं तो निश्चित रूप से दोनों का कारण रहा है और इन दोनों का कारण रहा है इसलिए दो तरह के हैं।

मनुष्य को यह समझने का अवसर मिलता है कि अच्छा करने से सुख का फल मिलता है और बुरा करने से दु:ख का फल मिलता है। कभी-कभी हमारे सामने एक प्रश्न पैदा होता है कि क्या पता अच्छा मिलता है कि बुरा मिलता है। क्या पता बुरे का ही फल अच्छा है। जब हम यह कहते भी हैं कि हमने अच्छा किया और हमें अच्छा नहीं मिला, तो अच्छा करते हुए जो बुरा मिला है, वह वर्तमान में किये कर्म का फल नहीं है। अच्छे फल का अच्छा कारण होना चाहिए और बुरे फल का बुरा कारण होना चाहिए। यदि आपने अच्छा किया है तो उसका फल बुरा नहीं हो सकता। जो कोई कर्म हमने कभी बुरा किया होगा, निश्चित रूप से किया है तो यह दु:खरूप फल उसका है। तो हम कौन से कारण का कौन सा कार्य है, कौन से कार्य का कौन सा फल है यह समझ नहीं पाते। हमारे पास स्पष्ट नहीं है इसलिए हमें यह भ्रम हो जाता है, हम इस उलझन में पड़ जाते हैं कि देखो हमने तो अच्छा किया था और हमारे साथ बुरा हो गया। वास्तव में हमने यदि अच्छा किया है तो उस अच्छे का तो अच्छा ही परिणाम होगा यदि हमारे साथ बुरा हो रहा है तो निश्चित हमारे किसी बुरे कार्य का है क्योंकि नियम यह है कि बुरे कर्म का ही बुरा फल हो सकता है, अच्छे कर्म का बुरा फल नहीं हो सकता। वहाँ अव्यवस्था नहीं है, अनियमितता नहीं है, अज्ञानता भी नहीं तो ऐसी स्थिति को जब हम समझते हैं तब मनुष्य इस संसार में सीख सकता है, यह अनुभव कर सकता है कि वह इस मृत्यु के माध्यम से संसार की जो विविधता है-इसकी अच्छाई और बुराई को जाने और समझे और अपने व्यवहार को सुधारे।

विद्वान् एकमत हो प्रीति से वर्तें

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़, सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे के विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें-वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों (साधारण जनों) में विरोध बढ़कर अनेकविध दु:ख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।

(स. प्र. भू.)

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

एक अमूल्य अलभ्य दस्तावेज़ खोजा गया- इतिहासप्रेमी स्वाध्यायशील ऋषि-भक्तों को यह जानकर अपार प्रसन्नता होगी कि हमें ऋषि-जीवन सम्बन्धी, ऋषि के जीवनकाल का ही एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ document प्राप्त हुआ है। यह मुन्शी इन्द्रमणि जी की आँखें खोलने के लिये मार्च सन् १८८३ में मेरठ से उर्दू में प्रकाशित किया गया। श्री आनन्दलालजी मन्त्री आर्यसमाज मेरठ ने १४ मार्च १८८३ को इसे छपवाया था। पं. लेखराम जी ही अकेले ऐसे ऋषि-जीवनी लेखक हैं जिन्होंने इसे पढ़ा, परन्तु इसे अपने ग्रन्थ में उद्धृत न कर सके।

अनुमान प्रमाण से हम कहते हैं कि लाला मुरलीधर जी अमृतसर ने भी इसे अवश्य पढ़ा।

ऋषि-जीवनी पर कार्य करने वाले गवेषकों में सबसे पहला यही लेखक है जो ऋषि-जीवनी में रुचि रखने वालों को इससे शीघ्र लाभान्वित करने जा रहा है। 'महर्षि दयानन्द सम्पूर्ण जीवन-चरित्र' ग्रन्थ में मुन्शी इन्द्रमणि जी पर प्रकाशित परिशिष्ट संख्या-२२ में हमने अन्य-अन्य विद्वान् जीवनी-लेखकों से कहीं अधिक नई व खोजपूर्ण सामग्री दी थी। इस दस्तावेज़ में क्या विशेषता है, यह हम अतिशीघ्र पहले परोपकारी के इसी स्तम्भ में देंगे। आठ पृष्ठ की इस पुस्तिका में दुर्भाग्य से पृष्ठ संख्या ५ हाथ नहीं लगा। उस पृष्ठ की सामग्री तक भी प्रभु कृपा से हम पहुँच जावेंगे। परोपकारी द्वारा इस उपलब्धि के लिये सम्पूर्ण आर्यजगत् को बधाई स्वीकार हो।

एक नम्र निवेदन- एक बार कोलकाता की 'आर्य सन्मार्ग संदर्शिनी सभा' पर कहीं मेरा एक व्याख्यान सुनकर अथवा लेख पढ़कर श्री स्वामी सत्यप्रकाशजी ने इस सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी लेने व चर्चा करने के लिये इस सेवक से भेंट की। पूछा, उसके विषय क्या थे? प्रयोजन क्या था? इस पर विद्वान् कम ही लिखते व बोलते हैं और स्वामीजी को इस विषय में उनके व्यक्तित्व के अनुरूप तब जानकारी नहीं थी। उन्हें बताया गया कि ऋषि-द्वेषी एक सेठ ने इसकी व्यवस्था करवाई और धन फूँका। प्रयोजन ऋषि की निन्दा के लिये एक महागठबन्धन तैयार करना था। प्रयोजन मूर्त्ति-पूजा, मृतक-श्राद्ध, बहुदेवतावाद आदि पौराणिक मान्यताओं को महिमामण्डित करना था। स्वामी जी तपाक से बोले, ''बस! मूर्खतापूर्ण अन्धविश्वासों का समर्थन।''

हम परोपकारी में बता चुके हैं कि पूज्य पं. युधिष्ठिरजी के निधन से पूर्व जब हम उनका पता करने गये तो श्रद्धेय मीमांसक जी ने इस सभा विषयक 'एक आर्य' नाम की पुस्तक दिखाने की उत्कट इच्छा प्रकट की। अगली बात प्रबुद्ध पाठक जानते हैं कि तब पण्डित जी ने अपनी ऊहा व चिन्तन का निचोड़ हमें आर्यजगत् को बताने की आज्ञा दी कि यह पुस्तक ऋषि द्वारा दी गई सामग्री या उत्तर का उर्दू रूपान्तर है। यह लाला साईंदास लिखित नहीं है।

तब पुस्तक अलभ्य थी। अब प्रभु-कृपा से इस अलभ्य दस्तावेज़ के एक नहीं दो संस्करणों की एक-एक प्रति हमारे पास है। संसार भर में और कहीं इसकी कोई प्रति किसी के पास न ही पढ़ी, न सुनी गई। हमने इसके पहले संस्करण का पहला तथा अन्तिम पृष्ठ दिल्ली में डॉ. वेदपाल जी को दिखा दिया। पुस्तक में कहीं भी न आदि में, न अन्त में, न भूमिका के अन्त में तथा न समाप्ति पर निष्कर्ष के अन्त में लाला साईंदास का नाम लेखक के रूप में (या सम्पादक के रूप में भी) छपा नहीं मिलता। डॉ. वेदपाल जी उर्दू अक्षर पढ़ लेते हैं। क्या हमें झुठलाने के लिये, पूज्य मीमांसक जी का कथन...वाले सज्जन जो धूम-धड़ाके से ला. साईंदास जी को इसका लेखक घोषित करने का व्यर्थ व्यायाम कर रहे थे, अपने किये पर पछतायेंगे? क्षमा मांगेगे या और कसरत करेंगे? हम इसकी यह दुर्लभ प्रति आर्यवीर अनिल के पुस्तकालय में अनेक अलभ्य document (दस्तावेज़ों) के साथ सुरक्षित कर देंगे। अब जो इसके दर्शन करना चाहे वह वहाँ कर सकेगा।

'ब्राह्मण' छप गया- मुसलमानी काल में चन्द्रभान ब्राह्मण नाम के एक विद्वान् फ़ारसी कवि ने 'ब्राह्मण' नाम की एक उच्च विद्वत्तापूर्ण कविता लिखी थी। पूज्य पं. चमूपति जी ने इसे अर्थ सहित एक आर्य पत्र में कभी छपवाया था। हमने इसे वहाँ से जैसी भी मिली सम्पादित करके फिर प्रकाशित करवा दिया, परन्तु मुद्रित करने वाले सम्पादक को फ़ारसी भाषा का कतई ज्ञान नहीं था सो

हमने उसे दोषयुक्त पाया। जितना सुधार सम्भव था कर दिया। विश्व पुस्तक मेला में ईरान के पुस्तक बिक्री केन्द्र वालों से इसे पुनः छापने की विनती की। इसमें मुक्ति से लौटने के वैदिक सिद्धान्त की पुष्टि की गई है। लखनऊ के एक सज्जन ने इस कवि पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। पुस्तक कोई नहीं दिखा सका। हर्ष का विषय है कि ईरान से अब यह पुस्तक छप गई है, प्राप्ति का यत्न हो रहा है। इसका शुद्ध संस्करण पं. चमूपति जी द्वारा किये गये अनुवाद सहित नये सिरे से सम्पादित करके छपवाने का सङ्कल्प है। आर्य सामाजिक विचारधारा के प्रसार के लिये यह एक मूल्यवान् रत्न छपवाकर हमें गौरव होगा।

'कुल्लियाते आर्य मुसाफिर' छप गई- परोपकारिणी सभा द्वारा कुल्लियाते आर्य मुसाफिर का पहला भाग छप गया है। दूसरे भाग का दूसरा प्रूफ़ कम्प्यूटर के पास जा चुका है। इसके शुद्धिकरण का, अशुद्धियाँ दूर करने का भरपूर प्रयास हो रहा है। पं. लेखराम जी व आर्य-धर्म को लेकर नेट पर मिर्ज़ाई बहुत विषैला प्रचार कर रहे हैं। आर्यसमाज चुप है। उत्तर देने कोई आगे नहीं आता। कुल्लियात को सम्पादित करते हुये पाद टिप्पणियों में तथा रक्तसाक्षी पं. लेखराम खोजपूर्ण ग्रन्थ में युक्ति, तर्क व प्रमाणों की झड़ी लगाकर इस अकारण आक्रमण का, छेड़छाड़ का मुँहतोड़ उत्तर दे दिया गया है। प्रत्युत्तर देते हुये मिर्ज़ाइयत को ऐसा घेरा है कि अब लज्जित होंगे। उत्तर तो क्या देंगे।

पं. लेखराम जी के बलिदान के समय का अन्तिम ग्रुप फ़ोटो छापकर, नेट में दिखाकर आर्य जाति को चिढ़ाया जा रहा है। इन दोनों ग्रन्थों में धर्म की वेदी पर बलिदान होने वाले अमर धर्मवीर का हमने भी वह ग्रुप फ़ोटो दिया है। पुस्तक में पं. लेखराम जी के अमर बलिदान, शौर्य, हुंकार और क्रूर हत्यारे पर मौलाना अब्दुल्ला मेमार के ऐतिहासिक उद्गार देकर मिर्ज़ाई जमात को ललकारा है। हिन्दू जाति को हुंकार भरकर आक्रमणकारियों को चुनौती देनी होगी-

युग ने करवट जो बदली, काँपे सारे अन्यायी।
रोते देखे मिर्ज़ाई, तर गई तेरी तरुणाई।।
आई बनकर वरदान तीखी छुरियों की धार...

यह ऐतिहासिक वर्ष- यह वर्ष पं. चमूपति गृह-निष्कासन शताब्दी वर्ष है। यह वर्ष धौलपुर सत्याग्रह शताब्दी व गढ़वाल सेवा शताब्दी वर्ष है, इस दृष्टि से तो यह वर्ष ऐतिहासिक है ही। बड़ी विनम्रता से परन्तु गौरव से यह बताने का अवसर नहीं छोड़ा जा सकता कि आर्यों ने इस वर्ष एक नया इतिहास भी रचा है। पूज्य पं. गंगाप्रसादजी उपाध्याय के महाप्रयाग अर्धशताब्दी वर्ष पर उनके साहित्य के चार भागों गंगा-ज्ञान सागर का प्रकाशन करके श्री अजय आर्य ने एक नया इतिहास रचा है। पहली बार एक महान् आर्य दार्शनिक के इतने लेखों, व्याख्यानों, पुस्तकों, पद्यों का, उनके जीवन-चरित्र का एक साथ प्रकाशन करके इतिहास पुरुष लाला गोविन्दराम के संस्थान ने सारे पूर्वजों और समस्त आर्यजगत् को गौरवान्वित कर दिया है।

आर्यसमाज के इतिहास में पहली बार किसी साहित्यकार द्वारा लिखित व सम्पादित इतने ग्रन्थ तथा पाँच सहस्र से ऊपर पृष्ठ एक वर्ष में छपकर आये हैं। यह अपने आपमें एक नया कीर्तिमान है। इसका श्रेय पूर्वजों को ही दिया जाना चाहिये जो एक दुबले पतले सामान्य से व्यक्ति इस लेखक के पाँच हजार से ऊपर पृष्ठ आर्यों ने छापकर अपने प्यार के उपकार से मेरी गर्दन झुका दी है।

मौलाना न्याज़ फ़तेहपुरी ने लिखा है- उर्दू के मूर्धन्य साहित्यकार और इस्लाम के मर्मज्ञ विद्वान् मौलाना न्याज़ फ़तेहपुरी जी को देश के एक शिरोमणि देशभक्त और आर्यसमाजी, उर्दू के एक शिरोमणि कवि तथा पत्रकार प्रो. तिलोकचन्दजी की पुस्तक 'कारवाने वतन' का प्राक्कथन लिखना पड़ा तो महाकवि तिलोकचन्द जी 'महरूम' की देश-प्रेम में डूबी रचनायें पढ़कर मौलाना न्याज़ फ़तेहपुरी को एक कटु सत्य लिखना पड़ गया। दोनों समकालीन थे। जन्म का वर्ष भी साथ-साथ था। मौलाना ने लिखा, जब मैं कुमार अवस्था में था तब मैंने कवितायें लिखनी आरम्भ कर दीं। मेरा विषय था शराब, शबाब (जवानी), पलकें, नयन, महबूबा और इश्क, बहिश्त, हूरें और दोज़ख़।

महाकवि 'महरूम' ने भी उसी आयु में उसी काल में कवितायें लिखनी आरम्भ कर दीं। इनके विषय थे मातृभूमि, देश का दुखड़ा, देश की दासता, दीनता, प्रजा का शोषण, विदेशी शासकों की लूट-खसूट, देश के शहीद। दोनों की सोच व जीवन के उद्देश्य में इतना अन्तर क्यों व कैसे? मौलाना न्याज़ उत्तर देते हैं कि मैं मुसलमान घर में जन्मा और महरूम एक आर्य हिन्दू घराने में जन्मे। अत्यन्त

मार्मिक शब्दों में न्याज़ फ़तेहपुरी ने यह बात लिखी है।

एक बार अखिल भारतीय जनसंघ के प्रधान रह चुके प्रो. बलराज मधोक जी को मैंने करोल बाग में यह प्रसंग सुनाया तो वह मुग्ध हो गये। मुझसे अनुरोध किया कि मुझे यह प्रसंग पढ़ना है। यह पुस्तक मुझे भी उपलब्ध करवाओ। मैंने उन्हें कहा, उर्दू बाजार में मिल जायेगी। वहाँ से ले लेना।

अपने पूर्वजों की, पुराने आर्यों के ऐसे-ऐसे प्रेरक प्रसंगों को दोहराते रहने से, प्रचार करने से ही हम अतीत को वर्तमान कर सकते हैं। कुछ समय देना पड़ेगा। कष्ट सहन करने होंगे। बातें बनाने से तो इतिहास नहीं बन सकता।

दिल्ली का समारोह- दिल्ली के समारोह में देश के प्रत्येक भाग से और विदेशों से भी बहुत धर्मप्रेमी आये। यह हर्ष का विषय है कि युवक भारी संख्या में आये। युवकों ने ऋषि लंगर में व्यवस्था में अच्छा सहयोग किया। इसके लिये प्रबन्धक बधाई के पात्र हैं। अच्छा होता कि समारोह में बोलने वालों को वैदिक धर्म, दर्शन तथा आर्यसमाज के इतिहास व उपलब्धियों पर ठोस विषय दिये जाते। मथुरा की जन्मशताब्दी, अजमेर की अर्ध बलिदान शताब्दी के पश्चात् घिसते-घिसते आर्यसमाज के मूलभूत सिद्धान्तों पर लेख लिखवाने व भाषण करवाने की परम्परा समाप्त सी हो गई। पं. चमूपति, आचार्य रामदेव, पं. गंगाप्रसाद चीफ़ जज, उपाध्यायजी, स्वामी वेदानन्द जी, मास्टर आत्माराम जी तथा पं. धर्मदेव की कोटि के वक्ता...दिल्ली में किसी व्याख्यान की कोई विशेष चर्चा न वहाँ सुनी और न लौटकर किसी ने प्रतिक्रिया दी। राजनेताओं का आकर्षण भी कई महानुभावों को था। शङ्का-समाधान के लिये डॉ. वेदपालजी का लाभ उठाया गया यह सूझबूझ का काम था।

महाशय कृष्णजी, स्वामी अभेदानन्दजी, स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी, आचार्य उदयवीर जी, भक्त फूलसिंह, दक्षिण के हुतात्माओं, भूमण्डल प्रचारक मेहता जैमिनि, महाबलिदानी पं. नरेन्द्र, दिल्ली के प्रथम आर्य पुस्तक विक्रेता बाबू दुर्गाप्रसाद इतिहास पुरुष आर्यसमाज के सबसे बड़े प्रकाशक लाला गोविन्दराम, श्री सरदारी लाल वर्मा, अजमानी जी, स्वामी धर्मानन्द का कहीं चित्र तक न देखा। साधनसम्पन्न बाबों की महिमा इन पर भारी पड़ी।

आर्यसमाज पर किये जा रहे प्रहारों का किसी ने उत्तर न दिया। देश-विदेश के नये साहित्य में गत तीस चालीस वर्षों में आर्यधर्म की कैसी छाप रही, क्या प्रतिकूल लिखा गया-इसकी वहाँ किसी ने चर्चा न की। नेट में पं. लेखराम जी व आर्यसमाज पर घिनौने वार-प्रहार और विषैले-प्रचार का किसी वक्ता व नेता ने वहाँ उत्तर न दिया। मानो कि आर्यसमाज दम ही तोड़ चुका है। दिल्ली से श्रद्धाराम पर एक नया ग्रन्थ छपा है। इसमें वैदिक धर्म की, वेदों की, ऋषि की भरपेट निन्दा है। इसका कोई खण्डन नहीं करता। ऋषि जी के नाम अजमेर से प्रकाशित श्रद्धाराम जी का दुर्लभ पत्र ही दिल्ली वाले छपवाकर बाँट देते तो कुछ सन्तोष होता।

डॉ. धर्मवीर जी आज होते तो मैं उपरोक्त ग्रन्थ की शव परीक्षा करके १५० पृष्ठ की अच्छी पुस्तक लिख देता। अब पं. शान्तिप्रकाश जी, ठाकुर अमरसिंह का युग गया। फोटो पत्रिकाओं के युग में संघर्ष कौन करे? १८५७ के विप्लव में महर्षि की भूमिका की कल्पित कहानियाँ वहाँ सुनाने वाले कई वक्ता विद्वान् थे। मायाजाल वाले भोगी बाबों के काण्डों की, रामपाल सरीखे चमत्कारी जेलवासी गुरुओं, सामूहिक बलात्कार, सहमति से सहवास पर कोई चिन्तन और आन्दोलन...कुछ न होना चिन्ताजनक रहा।

करणीय कार्य- कभी धर्मवीर महाशय राजपाल जी ने, फिर लाला गोविन्दराम जी ने ऋषि जीवन चित्रावली और आर्य सामाजिक चित्रावली प्रकाशित करवाई, यश पाया। युग बदला गया है। अब और कलापूर्ण चित्रावलियाँ छपनी चाहिये। बैंगलूर से आर्यसमाज के १२५ वर्षीय .....वयोवृद्ध वेदज्ञ साहित्यकार पं. सुधाकर चतुर्वेदी जी की पौत्री, डॉ. सुमित्रा जी ने अंग्रेज़ी में कर्नाटक के संघर्षशील नेताओं आर्य सत्याग्रहियों पर एक अति सुन्दर चित्रावली प्रकाशित की है। यह पठनीय व संग्रह करने योग्य है। अनजाने में ३-४ अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। गुलबर्गा दंगा के धर्मवीर लालसिंह जी आदि तथा श्रद्धेय पं. सुधाकर जी के चित्र भी छूट गये हैं।

डॉ. सुमित्रा बहुत सिद्धहस्त लेखिका और गवेषक हैं। आपसे सारे भारत के बलिदानी, ज्ञानी आर्यों पर एक

बड़ी चित्रावली तैयार करवानी चाहिये। आज श्री पं. भारतेन्द्रनाथ होते तो झट से ऐसी पुस्तक लिखवाकर छपवा देते। श्री अजय आर्य यह परियोजना हाथ में लें तो अंग्रेज़ी, हिन्दी व कन्नड़ में ऐसी पुस्तक उन्हीं से तैयार करवायें और छपवायें। यह पुस्तक श्रद्धेय पण्डित नरेन्द्रजी को समर्पित होनी चाहिये। कारण? आपको ऐसे कलात्मक साहित्य के प्रकाशन में विशेष रुचि थी।

लड़कियों के गुरुकुल- आर्यसमाजी पत्र, पत्रिकाओं व टी.वी. में आ रहे दुःखद गन्दे समाचारों को पाठक सुनते-पढ़ते होंगे। मैं अनेक सज्जनों की चिन्ता सुन-सुनकर चिन्तित व व्याकुल हूँ कि आर्यसमाज में बाबे व ब्रह्मचारी कन्या गुरुकुल चलाने में बहुत रुचि ले रहे हैं। कई अपनी-अपनी गाड़ी में कन्याओं को यहाँ-वहाँ कार्यक्रमों में ले जाते सुने गये हैं। कई घटनायें घट चुकी हैं। भले ही कहीं छपी नहीं। समय रहते ही इस रोग की रोकथाम होनी चाहिये। समलैङ्गिकता के युग में मैं आर्यों को सावधान करता हूँ कि नये-नये गुरुकुल यहाँ-वहाँ खोलते जाना और ब्रह्मचारियों का कन्या गुरुकुल चलाना आपत्तिजनक है। मित्रो! सुन लो!

''काजल की कोठरी विश्व यह बचकर रहो कलङ्क से
फिर पछताये क्या होवत है जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।''

श्री मोहनलाल तंवर जी का सुन्दर लेख- परोपकारिणी सभा के वैदिक पुस्तकालय के श्रीमान् दिवाकर जी से इस सेवक को महर्षि के बलिदान की घटना पर परोपकारी में छपे एक सुन्दर लेख की कुछ जानकारी मिली है। अभी परोपकारी तो नहीं मिला, परन्तु इसमें दिये गये एक नये तथ्य पर माननीय श्री मोहनलाल जी तथा परोपकारिणी सभा को बधाई भेंट करते हुये बहुत हर्ष होता है कि मोहनलाल जी को आर्य साहित्य व इतिहास में विशेष रुचि है। आपने एक ठोस ओर खोजपूर्ण तथ्य का अनावरण किया है कि जोधपुर का विलासी महाराजा जसवन्तसिंह नन्हीं भक्तन के रंग में रंगा था। महाराज जसवन्तसिंह या जोधपुर दरबार ने अपने प्रभाव से जोधपुर से पहले एक छोटे स्टेशन का नामकरण नन्हीं भक्तन के नाम पर 'भगत की कोठी' नाम का स्टेशन बनवा दिया।

यह बात अब तक इतिहासप्रेमियों से लुकी छिपी थी। राजस्थान में 'भक्तन' वेश्यायें होती हैं। मत सोचें कि 'भक्तन' कहलाने वाली कोई स्त्री नन्हीं हो या कोई और वह भक्ति अथवा उपासना के कारण भक्तन कहलाती है। इन दिनों राजस्थान के एक जाने-माने इतिहासकार का जो महर्षि का समकालीन है-मुझे एक पठनीय लेख मिला है। महर्षि के बलिदान व जोधपुर प्रवास पर पर्याप्त नई सामग्री मेरे हाथ लगी है। मोहनजी का लेख मिलने पर महर्षि के बलिदान पर 'तड़प झड़प' में नया प्रकाश डाला जायेगा। प्रतीक्षा कीजिये।

मेरा नम्र निवेदन- दिल्ली में किसी बन्धु ने अवलोकनार्थ एक नई पुस्तक 'मुस्लिम विदुषियों की घर वापसी' भेंट की। समय मिलेगा तो सारी पढ़ सकूँगा। 'कुल्लियात' के दूसरे भाग का कार्य शीघ्र पूरा हो जाने पर इस पुस्तक को ध्यान से देखूँगा। अभी विंहगम दृष्टि से देखा है। अच्छा है, नये-नये लेखक, नये-नये विषय लेकर आगे आयें, परन्तु जिस विषय का ज्ञान न हो उस पर कल्पना से या सुन-सुनाकर कुछ लिखना इतिहास को प्रदूषित व जनता को भ्रमित करने वाली बात है और घोर पाप है। यह भी कहूँगा कि प्रकाशक भी आँखें खोलकर ऐसा साहित्य निकालें।

पं. देवप्रकाश जी ने कभी मौखिक शास्त्रार्थ नहीं किया- उक्त पुस्तक में लिखा है कि पं. देवप्रकाश जी का पहला शास्त्रार्थ श्रद्धाराम फिल्लौरी से हुआ। यह तो विशुद्ध गप्प है। श्रद्धाराम की मृत्यु ऋषि दयानन्द से भी पहले हो गई थी। पण्डित जी प्रथम विश्वयुद्ध से कुछ पहले आर्य बने। वे तब भाषण शास्त्रार्थ करते ही नहीं थे। वार्तालाप व पठन-पाठन करते थे। इस पुस्तक में नर्गिस वाली कहानी भी प्रामाणिक नहीं। पण्डित जी की आत्मकथा की पाण्डुलिपि मेरे पास है। उसमें इस कहानी की कोई गंध नहीं। इस पुस्तक को पढ़कर कई एक के चलभाष आये...जो कुछ लिखा जावे प्रामाणिक होना चाहिये। इसी में शोभा है।

मुद्रण दोष के लिये क्षमा.प्रार्थना- नवम्बर प्रथम के अंक में रसाला एक आर्य की चर्चा में लाला साईंदास जी की बजाय लाला जीवनदास जी का नाम भूलवश छप गया। इसका कुछ कारण रहा। भूल के लिये लेखक क्षमा प्रार्थी है।

- नई सूर्यनगरी, अबोहर, पंजाब

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ५ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

सत्य तथा उसके अवरोधक

इन्द्रजित् देव

संसार में सबसे कम अल्पसंख्यक व्यक्ति वे होते हैं जो सत्यप्रिय होते हैं। सत्य होता तो सबके लिए है परन्तु अधिकतर लोग उसकी आवश्यकता अनुभव नहीं करते, न ही उसकी रक्षा व प्रचार-प्रसार में क्रियात्मक कुछ करते हैं। जिस दिन सब लोग सत्य की आवश्यकता तथा इसके लाभों को गहराई से अनुभव कर लेंगे, उसी दिन सुख व शान्ति के साम्राज्य की स्थापना हो जाएगी परन्तु इस दृढ़ सत्य के बावजूद सत्य की स्थापना अधिकांशतः नहीं हो रही। क्यों नहीं हो रही, इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने "सत्यार्थ प्रकाश" में सुस्पष्ट प्रकाश डाला है। वे इस ग्रन्थ की भूमिका में लिख गए हैं-

"जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।"

महर्षि ने सत्य के ग्रहण न करने के चार कारण लिखे हैं- अपने प्रयोजन अर्थात् स्वार्थ की सिद्धि, हठ अर्थात् अपने विचार पर ही दृढ़ बने रहना, दुराग्रह अर्थात् अपने मत के ठीक सिद्ध न होने पर भी उसी पर अड़े रहना तथा अविद्या अर्थात् शिक्षा आदि के द्वारा न उपार्जित या अप्राप्त ज्ञान। इन चारों में से कोई एक-न-एक कारण अवश्य उन लोगों पर लागू होता है जो सत्य को स्वीकार नहीं करते। इनमें चौथे क्रम में उल्लिखित अर्थात् अविद्या के कारण जो लोग सत्य को नहीं जानते-मानते, उन्हें यदि विद्या दी जाए, पुरुषार्थ करके वह ज्ञान प्राप्त कर लें तो यह सम्भव है कि वह शिक्षित हो जाने पर सत्यासत्य को जान लेंगे। आज भले ही वे सत्य को स्वीकार नहीं कर रहे तो भी उन्हें शिक्षित करके कोई शिक्षित व ज्ञानी व्यक्ति सत्य का ज्ञान करा सकता है तथा वे कालान्तर में सत्य के ज्ञाता हो सकते हैं। असत्य का परित्याग करके वे सत्याग्रही बन सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों के प्रति हमारी सहानुभूति व सहयोग रहेगा तो किसी-न-किसी दिन अवश्य ही असत्यवादियों, असत्यकारियों तथा असत्यमानियों की सूची से पृथक् होने में समुद्यत रहेंगे। शेष तीनों प्रकार के लोगों में से एक भी प्रकार के लोग कभी सत्य को स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि उनकी विवशताएं हैं, सीमाएं हैं। स्वार्थों, हठों व दुराग्रहों से वे अपना दामन छुड़ाना नहीं चाहते। उन्होंने इनसे स्वयं को बाँध रखा है तथा वे उन बन्धनों से तलाक लेने की इच्छा नहीं रखते, न ही प्रयत्न करते हैं। सत्य से परे रहने वाले ऐसे लोगों पर तरस आता है।

कुछ मन को मनाने में लगे रहते हैं,
कुछ लोग तन को सजाने में लगे रहते हैं,
कुछ धन को कमाने में लगे रहते हैं,
सत्य को तो वही लोग समझेंगे कि जो-
कुछ करके दिखाने में लगे रहते हैं।

सत्य के विषय में ईशोपनिषद् १५ में कहा गया है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितम मुखम्।
तत् त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

The face of truth is covered with a golden lidunveil, O Pushan (Fosterer), so that we may see the truth and follow it. अर्थात् हे प्रभो! संसार की सुवर्णमय चकाचौंध के ढक्कने से आपका ठीक-ठाक स्वरूप मेरे लिए ढका हुआ है। मेरी आप से प्रार्थना है कि सत्य के दर्शन के लिए सत्य को ढकने वाले इस आवरण को हे पूषण! हटा दीजिएगा। अमृत अर्थात् सत्य, धर्म के मार्ग में बाधक है हिरण्मयपात्र भौतिक सुख-समृद्धि की। इनमें बहुत आकर्षण है। संसार की चकाचौंध में, चमक-दमक में, भौतिक सुख-सुविधाओं में मुग्ध होकर हम भूल जाते हैं कि चमकने वाली प्रत्येक

वस्तु स्वर्ण नहीं होती। All that glitters is not gold. स्वार्थी लोग सत्य को ढका ही रहने देना चाहते हैं। लौकिक कीर्ति, यश, पद, प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा के चक्र में मनुष्य धर्म और सत्य की उपेक्षा करते हुए अनेक झूठ बोलता है, असत्य कार्य करता है। इसे ही महर्षि ने पूर्वोल्लिखित ''अपने प्रयोजन की सिद्धि'' लिखा है।

दीपावली के आस-पास पटाखे खूब बिकते हैं। इन्हें बनवाने व बेचने वाले भली-भाँति जानते हैं कि इनका चलाना वैज्ञानिक दृष्टि से हानिकारक है। वायु-प्रदूषण इनसे होता है व कोई दुर्घटना भी हो सकती है परन्तु फिर भी वे इन्हें बनाते तथा बेचते हैं। क्यों? धन कमाना ही उनका उद्देश्य रहता है। इसी प्रकार शराब बेचने वाला ठेकेदार शराब बेचता है, धन कमाने के लिए। वह जानता है कि यह पदार्थ पीने वाले के धन, स्वास्थ्य व प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक है परन्तु फिर भी खुलेआम इसे बेचता रहता है। यह भी संभव है कि इसकी हानियाँ जानकर स्वयं इसे न पीता हो किन्तु धन के लोभ में इसे बेचता रहता है। मूर्तिपूजा कराने वाला पौराणिक पण्डित जानता है प्राण-प्रतिष्ठा के कथित मन्त्र बोलकर मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा नहीं कर सकता परन्तु फिर भी वह यह प्रचार करता है कि इस मूर्ति में अब प्राण आ गए हैं अर्थात् यह सजीव हो गई है। इसकी पूजा किया करो। वह यह भी जानता है कि मूर्ति ईश्वर नहीं है परन्तु वह मूर्ति की पूजा को ईश्वर की पूजा कहकर धन-सम्पत्ति एकत्रित करता है। उसका अपना स्वार्थ व प्रयोजन है। हिसार के निवासी स्व० सीताराम आर्य ने एक घटना सुनाई थी। उनके अनुसार एक बार हिसार में पौराणिक शास्त्रार्थ महारथी (?) माध्वाचार्य आया था व अपने प्रवचनों में महर्षि दयानन्द के विरुद्ध व मूर्ति-पूजा के पक्ष में ही बोलता था। सीताराम जी उसके भाषणोपरान्त उससे बात करने उसके कमरे में गए, जहाँ वह ठहरा था। सीताराम जी ने उसकी असत्य बातों विषयक वैदिक विचार रखे व पूछा कि आप मूर्ति-पूजा के पक्ष में तथा महर्षि दयानन्द के विरुद्ध ही अधिक क्यों बोलते हैं? माध्वाचार्य ने उत्तर में कहा- ''मैं महर्षि दयानन्द के विरुद्ध जितना अधिक बोलता हूँ, मेरे भक्त मुझे उतनी ही अधिक दक्षिणा देते हैं।'' इसे ही कहते हैं सत्य सोने के ढक्कन से ढका है। स्वार्थी लोग उसे ढका ही रखना चाहते हैं। इसमें उनका निजी प्रयोजन है, स्वार्थ है। सन् १८६९ में काशी में ''वेदों में मूर्ति पूजा का आदेश नहीं है,'' इस विषय पर ३२ पौराणिक विद्वानों से शास्त्रार्थ हुआ था जिसमें महर्षि विजयी हुए थे तो पौराणिक पंडितों के मुखिया विशुद्धानन्द ने किसी को कहा था- दयानन्द कहता तो ठीक है कि वेदों में मूर्ति-पूजा का आदेश नहीं है परन्तु वह यह कह सकता है क्योंकि वह संन्यासी है। हम गृहस्थी ऐसा नहीं कह सकते।

वर्तमान राजनीति का दारुण दारिद्र्य यह है कि वह केवल वोट माँगती है क्योंकि राजनीति में पद, प्रतिष्ठा, सुविधा, अवसर व धन की अपार संभावनाएँ हैं। वोट के भिखारी कभी सत्य के पुजारी नहीं हो सकते। पाखंडी गुरुओं की शरण में जाकर उनके आगे नतमस्तक हो उनका आशीर्वाद लेते हैं। निजी मान्यताओं को परे रखकर प्रत्येक राजनेता इस-उस सम्प्रदाय के कार्यक्रमों में जाकर उनके कार्यों की प्रशंसा इसलिए करता है ताकि उनसे वोटों का प्रसाद मिल सके। सत्य सिद्धान्तों से उनका कुछ लेना-देना नहीं होता।

सत्य को छोड़कर असत्य की ओर झुक जाने का दूसरा कारण महर्षि ने हठ लिखा है। व्यक्ति या संघटन का किसी बात के लिए जिद करना अर्थात् हानि-लाभ व सत्य-असत्य का विचार किए बिना अपनी बात पर अड़े रहना या आग्रह करना। इतिहास में ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। नमस्ते अभिवादन करने का सार्वदेशिक, सर्वश्रेष्ठ व अर्थ की दृष्टि से सही व प्राचीन शब्द है। आधुनिक इतिहास में इसे आर्यसमाज ने पुनर्प्रतिष्ठित किया है और अब अभिवादन के लिए दूर-दूर तक प्रचलित हो गया है पर कुछ लोग परस्पर मिलने पर नमस्ते के स्थान पर नमस्कार शब्द ही बोलते हैं। वे नमस्ते अपनी प्रार्थना में बोलने को ठीक समझते हैं परन्तु लाख बार समझाने पर भी वे परस्पर मिलने पर नमस्कार ही बोलते हैं। व्याकरण से उन्हें कुछ सरोकार नहीं है। नमस्कार- नमः कार का अर्थ हुआ नमन किया परन्तु नमः अथवा नमस्कार में विधेय और उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती अर्थात् यह नमन व आदर-सत्कार किसका किया जा रहा है, उसका 'नमस्कार

में अभाव है। नमस्ते में प्रयुक्त ते से इसकी पूर्ति होती है। अतः अभिवादन करते समय नमस्ते शब्द का प्रयोग ही उचित है परन्तु उचित-अनुचित का विचार न करके अपनी बात पर अड़े रहने वाले लोग कभी सत्यनिष्ठ नहीं हो सकते।

तीसरा कारण दुराग्रह भी सत्य के मार्ग में बाधक है। यह दुः व आग्रह के मेल से बना शब्द है। आग्रह का अर्थ हठ, बल, जोर तथा आवेश है तथा दुः का अर्थ बुरा। बुरा हठ अर्थात् दुराग्रह। आप इसे आज आतंकवाद के रूप में देख सकते हैं। इस्लाम मतानुयायी यह मानकर नर-संहार करना भी पुण्य कार्य समझते हैं कि इससे जन्नत (=स्वर्ग) व उसके सुख मिलेंगे। यह धर्म है व सत्य का मार्ग है। हमारी मान्यताएं सच्ची है तथा इनको न मानने वाले लोगों की हत्या करना बड़े पुण्य का कार्य है। परस्पर बैठकर संवाद स्थापित करके तर्क व युक्तियों से सत्य धर्म का निर्णय करना उन्हें अभीष्ट नहीं है तथा अपने असत्य विचार को लेकर संसार में अपना राज स्थापित करना चाहते हैं।

हर युग में दुराग्रह मिलता है व इसको चुनौती भी हर युग में दी गई है। गैलिलियो ने जब सिद्ध किया कि पृथ्वी गोल है तो उसे जेल में डाल दिया गया। ब्रूनो को आग में जला दिया गया था। धर्म व राजशक्ति उन पर टूट पड़ी क्योंकि दोनों शक्तियों के पीछे बाईबल का यह दुराग्रह ही था कि धरती चपटी है। मंसूर को सूली पर चढ़ाया गया। सुकरात व दयानन्द को विष देकर मारा गया क्योंकि इनके समयों की राजशक्ति या समाज शक्ति का असत्य के साथ गहरा दुराग्रह रहा। ये सभी बलिदानी सत्याग्रही दुराग्रह की ही भेंट चढ़े थे।

असत्य की ओर झुकने वाले चौथी व अन्तिम प्रकार के लोग वे होते हैं, जो अविद्या से ग्रस्त होते हैं। हमें ऐसे लोगों पर तरस आता है, जो अविद्या अर्थात् अज्ञान के कारण सत्य से दूर होते हैं। उन्हें कभी किसी ने सत्य का बोध नहीं कराया तथा इसी कारण वे असत्य = अज्ञान = अविद्या का शिकार होकर अन्ध विश्वासों, पाखंडों, आडम्बरों, ढोंगों व गुरुडम में फंस जाते हैं। स्वार्थी व चतुर लोग इनका मानसिक, शारीरिक, आर्थिक तथा सामाजिक शोषण करते हैं। ऐसा करना उनके लिए सरल होता है। चतुर लोग भेड़-बकरियों की भांति सत्य से अनजान लोगों को हाँक ले जाते हैं क्योंकि तर्क व प्रमाण का नादान लोगों से दूर का भी सम्बन्ध नहीं होता जबकि मनु महाराज के अनुसार तर्क से धर्म अर्थात् सत्य का अनुसंधान करने वाला व्यक्ति ही धर्म (=सत्य) को जानता है, अन्य नहीं-

यस्तर्केणानुसन्धन्ते स धर्म वेद नेतरः।

मनुस्मृति १२/१०६

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के अष्टम नियम में यह कहा था- "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।"

पूर्वोक्त अपने स्वार्थ (=प्रयोजन) में लीन, हठी व दुराग्रही लोगों की बजाए हमें अधिक ध्यान, प्रयत्न, समय व साधन उन लोगों को सत्याग्रही बनाने में लगाने चाहिए जो अविद्या के कारण असत्य की ओर झुक जाते हैं क्योंकि उनके सत्य के ग्रहण करने की संभावना शेष तीन प्रकार के लोगों की अपेक्षा अधिक होती है। प्रत्येक आर्य का यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने परिचितों, अपरिचितों को अज्ञानी न रहने दे क्योंकि अविद्या, अन्याय तथा अभाव- संसार के इन तीन प्रकार के भयङ्कर शत्रुओं में सबसे विकट शत्रु अविद्या-अज्ञान ही है। पतञ्जलि ऋषि के अनुसार अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, इन चार प्रकार के क्लेशों की क्षेत्र = प्रसवभूमि = उत्पत्ति का स्थान है। अर्थात् अस्मितादि चारों क्लेश अविद्या की सत्ता से रहते हैं तथा न रहने से नहीं रहते,

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्

- योगदर्शनम् १/४

अतः हमें "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि" करने में प्रयत्न करते रहना चाहिए।

चूना भट्ठियां, सिटी सैन्टर के निकट,
यमुनानगर - १३५००१ (हरियाणा)

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

परोपकारिणी सभा की नवनिर्वाचित कार्यकारिणी

क्र.	पद	नाम
१.	संरक्षक	श्री गजानन्द आर्य
२.	संरक्षक एवं सम्पादक परोपकारी पत्रिका	डॉ. सुरेन्द्र कुमार
३.	प्रधान	डॉ. वेदपाल
४.	उपप्रधान	श्री ओम्मुनि
०५	उपप्रधान	श्री शत्रुघ्न
०६	उपप्रधान	श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
०७	मन्त्री	श्री कन्हैयालाल आर्य
०८	संयुक्त मन्त्री	डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा
०९	कोषाध्यक्ष	श्री सुभाष नवाल
१०	पुस्तकाध्यक्ष एवं प्रकाशन	श्रीमती ज्योत्स्ना 'धर्मवीर'
११	अन्तरंग सदस्य	डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार
१२	अन्तरंग सदस्य	श्री वीरेन्द्र आर्य

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं**। अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें**। लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं**। स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।

–संपादक

आर्यों के लिये शुभ सूचना

'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' छपने के लिये तैयार

कुछ समय पूर्व 'परोपकारी' में सूचना प्रकाशित हुई थी कि पं. लेखराम आर्य मुसाफ़िर के साहित्य 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' को परोपकारिणी सभा प्रकाशित करने जा रही है। इस सूचना को पढ़कर आर्यजगत् में उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही था, जिसके परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ को छापने के लिये कई साहित्यप्रेमियों ने सभा को सहयोग भी किया, परन्तु पंडित लेखराम जैसे नाम पर यह सहयोग पर्याप्त मालूम नहीं हुआ। पंडित लेखराम वह नाम है जिसके वैदिक-ज्ञान के सामने विरोधी काँपते थे। ऐसे सिद्धान्तमर्मज्ञ ने अपनी संचित ज्ञान-राशि को लेखबद्ध किया और इस लेखबद्ध ज्ञानराशि को यति शिरोमणि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एकत्रित किया और एक ग्रन्थ निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर'। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ। वर्त्तमान में यह ग्रन्थ दुर्लभ हो गया था। परोपकारिणी सभा ने इसे पुनः प्रकाशित करने का निर्णय लेकर पं. लेखराम को पुनर्जीवित कर दिया है। हमने लेखराम का गुणगान ही सुना है, उनके जीवन को ही पढ़ा है, पर वह इस उच्च पदवी को कैसे पा गये- इसकी सच्ची खबर तो उनके लिखे पन्ने ही बता सकते हैं। इन पन्नों को किताब रूप में छापने के लिये जैसा उत्साह, जैसी उमंग दिखनी चाहिये थी, उसमें अभी न्यूनता ही नज़र आती है।

अब यह ग्रन्थ छपने के लिये प्रेस में भेजा जा रहा है। अच्छे कार्यों का सदैव प्रोत्साहन होना चाहिये, इस दृष्टि से इस पुस्तक में **११०००/-रु.** का सहयोग करने वालों के नाम प्रकाशित किये जायेंगे। **एक लाख रु.** से अधिक का सहयोग करने वालों का चित्र सहित आभार व्यक्त किया जायेगा।

आइये, महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपना जीवन देने वाले आर्यपथिक पं. लेखराम को केवल शब्दों से याद न करके उन्हें पुनर्जीवित करने में भरपूर उत्साह से सहयोग करें।

ओम्मुनि, मन्त्री, परोपकारिणी सभा

परोपकारी के पाठकों से निवेदन

प्रिय पाठकगण, सादर नमस्ते!

आप जैसे सहृदय पाठकों से निवेदन है कि आपकी प्रिय पत्रिका हम आपकी सेवा में निरन्तर प्रेषित कर रहे हैं ताकि युगनिर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती के लोकोपकारी एवं धार्मिक सन्देश जन-जन तक पहुँच सकें तथा उन कल्याणकारी विचारों को पढ़कर प्रत्येक पाठक सदाचारी, धर्मप्रेमी एवं वैदिक विचारधारा का अनुयायी बनकर वर्तमान में प्रचलित पाखण्ड, अन्धविश्वास को छोड़कर बुद्धिजीवी, तार्किक एवं सत्यान्वेषी बनकर समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों से मुक्त रहे।

सज्जनो, हम इस पत्रिका की लाभ-हानि की बात नहीं कर रहे। इस निवेदन में केवल इतना जान लें कि पैसा भी किसी संस्था के प्रचार के लिए आवश्यक है। बहुत से महानुभावों का वार्षिक शुल्क हमें निरन्तर प्राप्त हो रहा है, परन्तु कुछ सदस्यों का शुल्क आता ही नहीं है, वर्षों तक रुका रहता है, पुनरपि उन्हें पत्रिका भेजी ही जाती है। अतः ऐसे सज्जनों से निवेदन है कि परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सदस्यता की रकम जमा कराकर इस पावन पत्रिका के निरन्तर प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर इस धर्म के स्रोत को जारी रखने की कृपा करें।

आशा है आप महानुभाव वार्षिक शुल्क भिजवाकर हमारा उत्साह निरन्तर बढ़ाते रहेंगे।

स्त्री शिक्षा

आचार्य उदयवीर शास्त्री

वैदिक कर्मकाण्ड की शिक्षा

ललित कलाओं और व्यावहारिक शिक्षा के अतिरिक्त कन्याओं को आवश्यक वैदिक कर्मकाण्ड की शिक्षा का भी उल्लेख रामायण महाभारत में आता है। स्त्रियाँ अनेक वैदिक सूक्तों का भी अध्ययन करती थीं, अनेक प्रमाण इस विषय का स्पष्ट समर्थन करते हैं। वनवास के लिए विदा होते समय राम जब अपनी माता को नमस्कार करने के लिए गये, तब वह आवश्यक वेद मन्त्रों से अग्नि में आहुति दे रही थी। रामायण में इस भाव को निम्नलिखित श्लोक के द्वारा प्रकट किया गया है-

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला।।
२/२०/१५।।

कौशेय वस्त्र धारण किये हुए, प्रसन्नचित्त, सदा नियम पालन करने में तत्पर कौशल्या रानी मंगल वेश में उस समय मन्त्रोच्चारण पूर्वक अग्निहोत्र कर रही थी। उस अवस्था में राम वहाँ पहुँचा और उसने-**ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम्**-माता को वहाँ अग्नि में होम करते देखा। बालि की पत्नी तारा मन्त्रों की जानकारी रखती थी। रामायण में वर्णन है, जब उसका पति सुग्रीव के साथ युद्ध करने के लिये गया, तब उसने अपने पति के लिये शत्रु पर विजय प्राप्त करने की कामना से एक विशेष यज्ञ किया। '**ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी**' (४/१६/१२)। उसने यह यज्ञ वेद मन्त्रों को जानते हुए किया था। सीता को खोजते हुए जब हनुमान निराश हो गया, तब उसके पाने का उसने यही उपाय विचारा कि सायं सन्ध्या के लिये सीता अवश्य नदी के किनारे आयेगी। रामायण में इस प्रसंग का श्लोक निम्नलिखित है-

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदी चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी।।
५/१४/४९।।

सन्ध्याकाल के कर्म में मनोयोगपूर्वक तत्पर रहने वाली जानकी स्वच्छ जल से युक्त नदी के इस तट पर सन्ध्या के लिये अवश्य आयेगी। सीता के सन्ध्या कार्य में हनुमान को उस समय की सामाजिक प्रथा तथा महिलाओं के अवश्यानुष्ठेय धार्मिक कार्यों की जानकारी के अनुसार इतना दृढ़ विश्वास था। रामायण के टीकाकारों ने इस प्रसंग में श्लोकार्थ के लिये बहुत खींचातानी की है। जिस भावना को उन्होंने इन श्लोकों से प्रकट करने का यत्न किया है, वैसी भावना उनके अपने काल के समाज में पाई जाती रही है, उसी को उन्होंने रामायण काल पर आरोपित करने का साहस किया है। मूल रामायण में स्त्री को मन्त्र के उच्चारण का निषेध उपलब्ध नहीं होता। महाभारत (१२/२७२/७) में भी वर्णन है कि विदर्भ देश में ऋषिपत्नी अपने पति के साथ बैठकर यज्ञादि अनुष्ठान को सम्पन्न करती थी। संभवतः उस काल में यह एक सामान्य व्यवहार था, जिससे पत्नी का मन्त्र और कर्मकाण्ड का ज्ञान सूचित होता है।

इस आधार पर कतिपय विद्वानों ने यह अनुमान किया है कि स्त्रियों को किसी विशेष कर्मकाण्ड और कुछ इने-गिने व निश्चित मन्त्रों की शिक्षा दे दी जाती होगी। साधारण रूप से स्त्रियों को वेद के अध्ययन का अधिकार नहीं था। क्योंकि साधारण वेदाध्ययन के लिये उपनयन तथा वेदारम्भ संस्कार आवश्यक बताए गए हैं और स्त्रियों का उपनयन आदि न होने के कारण वेदाध्ययन में उन्हें स्वतन्त्रता न थी, पर ऐसी भावनाओं का उल्लेख रामायण में उपलब्ध नहीं होता। महाभारत में भी कोई ऐसा स्पष्ट उल्लेख नहीं हैं। प्रत्युत इससे विपरीत भावना का ही वहाँ वर्णन मिलता है, जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है। रामायण काल में सर्वथा नहीं और महाभारत काल तक भी स्त्रियों के लिये ऐसी भावना जन्म नहीं ले पाई थी। फिर जब कुछ सीमित मन्त्रों की तथा मन्त्रपूर्वक कर्मकाण्ड की शिक्षा के लिये स्त्रियों को उपनयन की आवश्यकता न थी तब शेष वेद का अध्ययन करने के लिये उपनयन क्यों आवश्यक था?

वस्तुतः उपनयन व वेदारम्भ संस्कार, बालकों के विधिपूर्वक गुरुकुल में प्रवेश होने के आवश्यक संकेत थे। बालकों की शिक्षा का-समाज की आगामी स्थिति को दृढ़ व उपयोगी बनाने के लिये-यही एक निश्चित क्रम था। तत्कालीन समाज की रचना में स्त्रियों का जितना भाग था, उसके लिये बालकों के समान उनका गुरुकुल अथवा बाहर आश्रमों में जाकर शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझा गया था, इसलिये उनके लिये उपनयन आदि का प्रश्न ही नहीं उठता। उनको सब प्रकार की आवश्यक शिक्षा-घर या बस्ती में रहते हुए ही उपलब्ध कराने का प्रबन्ध कर दिया जाता था और वह इतना पूर्ण प्रबन्ध होता था कि उससे समाज के संगठन तथा अभ्युदय में किसी प्रकार की शिथिलता आने का भय न रहता था।

रामायण आदि में जब हम कतिपय स्त्रियों को मन्त्र का अध्ययन व मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्निहोत्र आदि करते हुए वर्णित पाते हैं, तो उससे यह अनुमान करना सर्वथा असंगत होगा कि उनको वेद की केवल इतनी ही शिक्षा दी जाती होगी अथवा उससे अतिरिक्त वेदभाग के अध्ययन में उनको अधिकार न था। प्रत्येक पढ़ने वाले पुरुष को भी समस्त वेद का ज्ञान हो या वह वैदिक ज्ञान में पारंगत हो अथवा आवश्यक रूप से सम्पूर्ण वेद की शिक्षा दी जानी अनिवार्य हो, ऐसा कोई नियम नहीं था। पुरुषों में भी वेद के पारंगत अथवा समस्त वेद के ज्ञाता बहुत कम व्यक्ति रहते थे। आवश्यक वेदभाग अथवा अंग-उपांगों का अध्ययन अपनी इच्छा, शक्ति व उपयोगिता के आधार पर ही प्रचलित था। रामायण आदि के उक्त प्रसंगों से हमने केवल यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि उस काल में स्त्रियाँ वेद व कर्मकाण्ड की शिक्षा का भी उसी प्रकार ग्रहण कर सकती थीं, जैसे कि पुरुष। उनके लिये इसमें कोई शास्त्रीय या सामाजिक बाधा नहीं थी। उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता की बात दूसरी है।

स्त्री-शिक्षा की एक विशेषता

इस दिशा में जो कुछ वर्णन रामायण, महाभारत में मिलते हैं, उनसे स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में एक स्पष्ट विशेषता प्रतिफलित होती है। पहली पंक्तियों में भी उसका संकेत किया गया है। वह है-बालिका का शिक्षा के लिये घर अथवा बस्ती से बाहर न जाना। वे आश्रम-जीवन बिताने के लिये बाध्य न थीं। यदि शिक्षा के लिये व्यवस्थानुसार उन्हें अपने घर से बाहर बस्ती में ही जाना पड़ता था, तो उनके लिये नियम काल तक अध्ययन करने के अनन्तर घर आ जाना आवश्यक था। दिन का कोई सा भाग उनके अध्ययन के लिये निश्चित था। रात्रि में घर आकर रहने के लिये वे बाध्य थीं। विराट पर्व (अ. २२) में स्पष्ट उल्लेख है-उत्तरा के साथ नाट्यगृह में शिक्षा के लिये नगर की जो कन्या आती थीं, वे सब दिन में शिक्षा ग्रहण कर अपने अपने घर चली जाती थीं। **'दिवात्र कन्या नृत्यन्ति, रात्रौ यान्ति यथागृहम्'**। नाट्य के समान अन्य विषयों की शिक्षा के लिये भी ऐसा ही क्रम रहा होगा। इसीलिये कन्याओं को आश्रम-जीवन बिताने और उपनयन आदि के लिये बाध्य नहीं किया जाता था संभवतः यह व्यवस्था कालान्तर में आकर उनके उपनयनादि के लिये निषेध के रूप में परिवर्त्तित हो गई हो।

इसके आधार पर कतिपय विद्वानों ने यह परिणाम निकालने का यत्न किया है, कि कन्याओं को केवल ललित कला की ही शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। इसके अतिरिक्त साधारण पढ़ना-लिखना सिखा दिया जाता होगा। पर उनकी शिक्षा में किन्हीं अन्य विषयों का विशेष प्रवेश न रहता होगा। वस्तुतः यह विचार रामायण महाभारत की वास्तविक भावना को प्रस्तुत नहीं करता। अनेक महिलाओं के जीवन में ऐसी घटना आई है, जिनका वर्णन उनके चतुरस्त्र वैदुष्य पर अच्छा प्रकाश डालता है। राज्यशासन के सामान्य नियमों का तो राजकुमारियों को अच्छा ज्ञान होता ही था, पर अनेक घटनाओं में उनके गम्भीर ज्ञान का परिचय मिलता है। कुरु की सभा में द्रौपदी की वक्तृत्व शक्ति, तर्क संगत प्रवचन, तात्कालिक संविधान का गंभीर ज्ञान, उनकी सर्वाङ्गीण विद्वत्ता के अच्छे परिचायक हैं (म. भा. २/७१)। सावित्री की विद्वत्ता को हम साधारण नहीं कह सकते। क्रूर यम के साथ उनका जो संभाषण महाभारत (३/२९७/११-५४) में उपलब्ध होता है, हम देखते हैं कि उसने यम को भी द्रवीभूत कर दिया। इसका यही अभिप्राय है कि उसके तर्क और योग्यता के सन्मुख यम को भी झुकना पड़ा। उसने सावित्री को मनोवाञ्छित वर दिये, जो

वस्तुतः उसकी योग्यता के उपयुक्त पारितोषिक कहे जाने चाहियें। तारा अकेली ही क्रुद्ध लक्ष्मण का सामना कर सकी। उसने स्वयं सुग्रीव के ऊपर किये गये दोषारोपण की सन्तोषप्रद और न्याययुक्त व्याख्या की और उसका उचित व उपयुक्त समाधान किया (रामा. ४/३५,३६)। दण्डकारण्य में ऋषियों के कहने पर जब राम निरपराध दण्डकवासी राक्षसों का वध करने के लिये उद्यत हुए, तो उस समय सीता सामने आई और उसने इस कार्य से राम को रोका, क्योंकि राम का वह कार्य तात्कालिक संविधान के विरुद्ध था। निरपराध पर हाथ उठाना पाप है। राम ने उसके कथन को आदरपूर्वक स्वीकार किया (रामा. ३/९)। सीता का यह छोटा सा प्रवचन उसकी परिमार्जित विद्वत्ता का द्योतक है। महाभारत में वर्णित मन्दालसा का वृत्तान्त उसके राज्य शासन सम्बन्धी ज्ञान के साथ-साथ दर्शन तथा अध्यात्म विषयक गम्भीर ज्ञान को स्पष्ट करता है फिर भी यह संभव है कि संघर्षमय गार्हस्थ जीवन को सुखमय व कोमल बनाने की भावना से स्वभावतः महिलाओं की संगीत आदि ललित कलाओं की ओर अधिक अभिरुचि एवं प्रवृत्ति रही हो, जो सब कालों में एक समान कही जा सकती है।

ललित कलाओं तथा अन्य विषयों की शिक्षा के साथ स्त्रियों की गृह-प्रबन्ध एवं अन्य घरेलू व्यवसाय सम्बन्धी शिक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। उन्हें माला बनाना, चित्रकारी करना इत्यादि निःशंक सिखाया जाता था। वे घर में शकुन आदि का ज्ञान भी उपार्जन कर लेती थीं। पक्षियों की बोलियों के अभिप्राय की व्याख्या करने में तारा बहुत निपुण थी। (तुलना करें-'सर्वभूतरुतज्ञा' म. भा. ३।२८०।१९।।रामा. ३।५२) लंका की स्त्रियों के समान सीता भी इस प्रकार के संकेत और शकुनों की सन्तोषप्रद व्याख्या कर सकती थी। (रामा. ३।५२।। तथा ५।२७।९-४७)।

कतिपय महिलाओं के शिक्षा सम्बन्धी वर्णनों के अनुसार यह सूचित होता है कि स्त्रियां सब प्रकार के ज्ञान को घरेलू परम्परा द्वारा, अपने पिता भाई व अन्य अभिभावकों द्वारा अथवा ऋषियों, प्रवचनकर्त्ताओं तथा अन्य उपयुक्त वयस्क व्यक्तियों द्वारा घर में ही उपार्जन करती थीं। घर से अभिप्राय अपना निजी घर तथा अपनी बस्ती में ही किसी विशेष व्यक्ति अथवा सार्वजनिक प्रबन्ध द्वारा व्यवस्थापित घर से है, जो इसी कार्य के लिये निर्धारित रहता था। बालकों के गुरुकुलों अथवा ऋषि-आश्रमों के समान रामायण महाभारत में कन्याओं के लिये किन्हीं ऐसी संस्थाओं का निर्देश नहीं मिलता। सीता (रामा. २।२७।१०) और द्रौपदी (म. भा. ३।३२।६०-६२) के कथन इस रीति को स्पष्ट करते हैं।

रामायण महाभारत का यह संक्षिप्त निरीक्षण स्पष्टता से प्रकट करता है कि शिक्षा के विषय में उस समय का जन-समाज बहुत उन्नत था। उनका शिक्षाक्रम इस प्रकार का था, जिससे वे भौतिक जीवन स्थिति और आध्यात्मिक उन्नति के योग्य बने रहें। शिक्षा प्रणाली में उनके सन्मुख संभवतः सबसे अधिक आवश्यक था विद्यार्थी का चरित्र-निर्माण तथा उसके द्वारा सुख शान्तिमय समाज का दृढ़ व उन्नत संघटन। भृति आदि के निम्न स्तर लक्ष्य उनके सन्मुख कदापि न थे। आज भी हमारे लिये वह एक असंदिग्ध आदर्श हो सकता है। उसका अनुकरण करने पर आये दिन का शिक्षाक्रम सम्बन्धी झींकना समाप्त किया जा सकता है।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

सप्त सिन्धु सूक्त

पं. बुद्धदेव विद्यालंकार

वेद में इतिहास बताने वालों ने बहुत दूर-दूर की कौड़ियाँ ली हैं। कोई वेद में आर्य और दस्यु दो जातियों का इतिहास बताते हैं, जिनमें से आर्यों का रङ्ग गोरा तथा नाक नोकीली थी तथा दस्युओं की चपटी नाक तथा काले रङ्ग का बताते हैं। कोई-वैदिक लोग मध्य एशिया से आये-ऐसा बताते हैं। कोई पूर्व से पश्चिम की ओर आये ऐसा बताते हैं, परन्तु इन सब लाल बुझक्कड़ों की छलाङ्गें जिस खूंटे से बन्धी हुई हैं, वह ऋग्वेद के दशम मण्डल का ७५ वाँ सूक्त हैं, जिसे सप्तसिन्धु सूक्त भी कहते हैं। इन विद्वानों का कथन है कि इस सूक्त में सिन्धु, गंगा, यमुना, सतलुज आदि नदियों का वर्णन है और क्योंकि सबसे पहिले सिन्धु का वर्णन है, इसलिये आर्य लोग मध्य एशिया के निवासी थे और सिन्धु पार करके भारत में आये। हमें आज इस बात की पड़ताल करनी है कि इस सूक्त में कहीं नदियों का वर्णन है भी वा नहीं? किन्तु अभी हम अभ्युपगमवाद से मान लेते हैं कि इस सूक्त में नदियों का ही वर्णन है, तब यदि इसमें नदियों का ही वर्णन हो तो इन बातों का समाधान नहीं होता।

प्रश्न (१) यदि इस सूक्त में नदियों का वर्णन है तो सिन्धु के ठीक पश्चात् गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री का वर्णन कैसे आया? क्या आर्य लोगों ने सिन्धु पार करते ही एक लम्बी छलाङ्ग मारी और फिर वह उल्टे चल पड़े। गङ्गा के पश्चात् यमुना, यमुना के पश्चात् सरस्वती, फिर शुतुद्री-यह क्या गोरखधन्धा है?

फिर क्या सप्तसिन्धुवादी यह भी बतलाने की कृपा करेंगे कि वह सिन्धु नदी कौन सी है, जो गोमती में जा मिली है? फिर यह तमाशा और देखिये कि सायण तो 'क्रुमुम्' को गोमती का विशेषण बताते हैं और यह महापुरुष इसमें क्रुमुम् ढूंढ रहे हैं। फिर क्रुमुम् का गोमती से क्या सम्बन्ध है, यह सारे इतिहासकार शीर्षासन करके भी नहीं बता सकते। कहाँ सिन्धु, कहाँ क्रुमुम् और कहाँ गोमती। बलिहारी है इन लाल-बुझक्कड़ों की लीला की।

अब जरा सिन्धु नदी की ओर आइये। इसका वर्णन वेद के ही शब्दों में लीजिये।

स्वश्वा सिन्धुः सुरसा सुवासा
हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि
वस्ते सुभगा मधुवृधम्।

ऋ. १०.७५.८

इसका सायणकृत अर्थ सुनिये।

यह सिन्धु (स्वश्वा) शोभनाश्वोपेता- अर्थात् सुन्दर घोड़ों वाली है। (सुरथा) अर्थात् सुन्दर रथों वाली है। (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों वाली है। (हिरण्ययी) सोने के भूषणों वाली है। (सुकृता) सुकृता (वाजिनीवती) अन्नवती (ऊर्णावती) ऊन वाली है, क्योंकि उसके किनारे ऊन भी होती है, जिसके कम्बल बनते हैं। (युवतिः) नित्यतरुणी है अर्थात् उसमें सदा जल भरा रहता है। (सीलमावती) सीलमा एक पौधा है, जिससे हल जोतने की रस्सी बनती है, वह भी उसके किनारे होती है। (उत) और (मधुवृधम्) निर्गुण्डी आदि मधुवर्धक औषधियों से (अधिवस्ते) वस्त्र की तरह आच्छादित रहती है। अब भला कोई सायण से पूछे, घोड़े वाली कौन सी नदी होती है? उत्तम वस्त्र कौन सी नदी पहनती है? ऊन किस नदी में रहती है? इन सब के उत्तर में कहा जाएगा कि उसके किनारे रथ घोड़े होते हैं। सो यह तो सब ही नदियों के किनारे होते हैं। अच्छा फिर हिरण्ययी=सोने के आभूषण वाली, यह विशेषण नदी में कैसे चरितार्थ होगा? कहा जाएगा कि उसके किनारे रहने

वाले लोगों के पास बहुत से सोने के आभूषण होते हैं।

अच्छा यह सब विशेषण तो खेंचतान कर किसी प्रकार सङ्गत कर भी लिये जावें, किन्तु एक विशेषण यहाँ ऐसा है, जिसको सायण चुपचाप एक घूँट में पार कर गया है। वह (सुकृता) 'अच्छी प्रकार तैयार की गई' है, यह विशेषण नहर का तो हो सकता है, किन्तु नदी का तो कभी भी नहीं हो सकता। नदियाँ 'सुकृता' किसी प्रकार भी नहीं कहला सकतीं। यह विशेषण तो किसी शिल्पी द्वारा निर्मित पदार्थ का ही हो सकता है, जिसकी ओर इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में आया हुआ 'कारु' शब्द निर्देश कर रहा है। स्तोत्रकर्त्ता को भी कारु इसीलिये कहते हैं कि यह भी एक प्रकार का शिल्पी है। एक और शब्द इस सूक्त में ऐसा है, जो नदियों के वर्णन से मेल नहीं खाता, वह शब्द है-मरुद्वृधा। निरुक्तकार इस शब्द की व्याख्या करते हुये लिखते हैं "**मरुद्वृधाः सर्वा नद्यो मरुत एना वर्धयन्ति।**" सारी नदियां मरुद्वृधा हैं, क्योंकि मरुत् इनको बढ़ाते है। इसीलिये दुर्गाचार्य ने "मरुद्वृधे" विशेषण सब नदियों का माना है।

अब देखना चाहिये पवन नदी का विशेषणकर्ता है। वह नदी कैसे करेगा?

इस प्रकार हमने देख लिया कि यहाँ नदियों का वर्णन किसी प्रकार भी नहीं हो सकता? हाँ, किसी प्रकार किसी रूप में नहरों का वर्णन तो हो भी सकता है, परन्तु वह गौण रूप में ही होगा। इस सूक्त में मुख्यरूप से किसका वर्णन है, यह बतलाने वाला एक शब्द इस सूक्त में पड़ा हुआ है। वह शब्द है (आजौ) युद्धे-अर्थात् युद्ध में। इस सूक्त का अन्तिम मन्त्र इस प्रकार है-

सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं
तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ।
महान् ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य
स्वयशसो विरप्शिनः।।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं। चिकित्सालय का समय प्रात: ९ से ११ बजे तक है। रविवार का अवकाश होता है।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

उन्नति का कारण सत्योपदेश

जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। **(स. प्र. ३)**

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

ईश्वर (वैज्ञानिकों की दृष्टि में), प्रस्तुतकर्ता एवं अनुवादक - पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

मूल्य -१५० रु., **पृष्ठ** - २६४

दुनिया में दो तरह के मनुष्य पाये जाते हैं, एक वो जो भगवान् को अर्थात् उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और दूसरे वे जो भगवान् जैसी किसी सत्ता पर भरोसा नहीं करते। पहले को आस्तिक और दूसरे को नास्तिक कहा जाता है। नास्तिकों के अपने तर्क हैं और इन तर्कों में वे प्रायः वैज्ञानिक प्रयोगों, आविष्कारों, विज्ञान की प्रगति की दलीलों का ही हवाला देते हैं। विज्ञान है तो बहुत अच्छी चीज़, पर अगर कहीं किसी वैज्ञानिक की चूक से कुछ गलत निष्कर्ष आ जाये तो उसे आंखें बन्द करके मान लिया जाता है। आखिर वैज्ञानिक भी तो मनुष्य ही है, गलती तो वह भी करता ही है। इस तरह एक नये प्रकार का अन्धविश्वास 'वैज्ञानिक अन्धविश्वास' जन्म लेता है और दो अन्धविश्वास आपस में टकरा जाते हैं। जो भगवान् को नहीं मानता, वह भी सोचना नहीं चाहता, केवल दूसरों के भरोसे चलता है और जो मानता है, उसने भी अपना दिमाग बाबाओं के पल्ले बाँध रखा है। इन दोनों से अलग कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने मस्तिष्क को थोड़ा मेहनत करने देते हैं और सत्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही कुछ वैज्ञानिकों के विचारों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है। जरूरी नहीं कि ये सभी वैज्ञानिक भगवान् को स्वीकार करते ही हों, पर वह इतना तो स्वीकार करते ही हैं कि कुछ तो है जो विज्ञान की पकड़ से बाहर है। उनकी इसी 'ना' में शायद 'हाँ' छिपी है, बस अन्तर इतना ही है कि उनकी वह खोज बिना नाम वाली है और वेद ने उसको नाम दे दिया है- 'ईश्वर'।

त्रैतवाद- लेखक-विद्यामार्तण्ड पंडित बुद्धदेव विद्यालङ्कार

मूल्य-२० रु., **पृष्ठ** -४०

परिचय- पं. बुद्धदेव जी एक बार अपने आर्य मित्र के पास मिलने गये। उन्होंने देखा कि मित्र का बड़ा बेटा कम्युनिस्ट विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। कारण यह कि वह देश-विदेश में घूमकर आया है और किताबें भी कम्युनिज़्म की ही पढ़ता है। पंडित जी ने वह पुस्तक मांगी, जिससे कम्युनिज़म का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उस पुस्तक का नाम था The Origin of life on the Earth, जिसका विषय था, 'पृथ्वी पर पहली बार जीवन कैसे आया?' बुद्धदेव जी ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर इसकी समीक्षा की और उस समीक्षा की एक पुस्तक बन गई- त्रैतवाद।

आख्यातिक- लेखक- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- २५० रु. , **पृष्ठ** - ६०८

परिचय- महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन पर बहुत बल देते थे। विशेषकर व्याकरण पर, जो कि सब शास्त्रों की कुंजी है। संस्कृत व्याकरण को सरल एवं सुगम बनाने के लिये उन्होंने पाणिनीय व्याकरण के सहायक ग्रन्थों के रूप में 'वेदांग प्रकाश' नाम से १४ पुस्तकें लिखीं। उनमें से आठवाँ भाग यह 'आख्यातिक' है। इसमें मूलतः धातु पाठ की व्याख्या है। साथ ही उन धातुओं के रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समझाया गया है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

संस्था समाचार

मेले की तैयारियाँ अन्तिम चरण में- सभा मंत्री श्री ओममुनि जी की अध्यक्षता में रविवार ०४ नवम्बर को ऋषि मेले सम्बन्धी दूसरी बैठक आयोजित की गई। पिछले माह ७ अक्टूबर को जिन-जिन कार्यों के लिये जो-जो अधिकारी और कार्यकर्त्ता निश्चित किये गये थे, उनके द्वारा अब तक किये गये कार्यों की जानकारी ली गई। कुछ लोग जो पिछले बैठक में आये थे और इस बार नहीं आ सके, उनकी भी जानकारी लेकर शेष कार्यों को शीघ्र सम्पन्न करने-कराने हेतु मंत्री जी ने निर्देश दिया। इस बैठक में संयुक्त मंत्री श्री दिनेश शर्मा, डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी, आचार्य विद्यादेव जी, श्रीमती ज्योत्स्ना धर्मवीर, श्रीमती कुमुदिनी आर्य, श्रीमती सरला मेहता, श्रीमती रश्मिप्रभा, पूजा रावत, हर्षिता नागर, दीपा कौरानी, अनुराधा छीपा, सुरभि शर्मा, सपना शर्मा, दीपमाला राजावत, श्री वासुदेव आर्य, श्री रमेश मुनि, श्री मुमुक्षु मुनि, श्री आशीष सिंह कटारिया, श्री सोहन लाल कटारिया, डॉ. मृत्युंजय, श्री विजय गहलोत, श्री सेवामुनि, आर्यवीर दल के जिला मंत्री श्री विश्वास पारीक, श्री सुशील शर्मा, श्री अभिषेक कुमावत, श्री सुनिल कश्यप, श्रीराम प्रजापत, श्री नरेन्द्र सिंह, अंशु कुमावत, नीरज चौधरी, सुनिल जोशी, दयाराम निषाद, रक्षित शर्मा, सुमित नागर, पीयुष कुमावत, श्री मोहन चन्द, श्री चांद भटनागर, अमित पाठक, देवेश शर्मा, शम्भु सिंह चौहान, विमल साहू, राजेश भार्गव, यशपाल सिंह, अशोक कुमार आर्य, सचिन छीपा,श्री शान्तिदेव सोमानी, श्री सुरेन्द्र सिंह, श्री मोहन लाल तंवर, श्री योगेश कुमार इन्दौरा उपस्थित रहे।

दीपावली कार्यक्रम- प्रात: काल विशेष यज्ञोपरान्त डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी जी ने महर्षि दयानन्द जी के उपदेश और निर्वाण पर व्याख्यान दिया। आचार्य विद्यादेव जी ने दीपावली पर्व के प्राकृतिक एवं खगोलीय कारणों और ऐतिहासिक महत्त्व को समझाया। आश्रमवासियों ने गीत-भजन सुनाया।

गुरुकुल में दीपावली अवकाश- रविवार ४ नवंबर को गुरुकुल के सभी ब्रह्मचारी दीपावली पर्व मनाने अपने-अपने घर चले गये।

दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन-प्रात: एवं सायंकाल यज्ञोपरान्त डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी, आचार्य विद्यादेव जी, श्री ओममुनि जी और डॉ. प्रणव आर्य जी के व्याख्यान हुए। पं. भूपेन्द्र जी और गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने भजन सुनाया।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, वैदिक यन्त्रालय, अनुसन्धान भवन एवं वैदिक पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी, ऋषि अन्त्येष्टि स्थल-मलूसर, ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों को देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलकर शंका-समाधान करने, उपदेश ग्रहण करने, व्याकरण-दर्शन-वेद-उपनिषद् आदि शास्त्रों का अध्ययन करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटन स्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिए देश-विदेश के संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, पुरोहित, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, आर्यवीर, आर्यवीरांगना, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, विद्यालय-महाविद्यालय-विश्वविद्यालय में अध्ययनरत छात्र-छात्रायें, गृहस्थ स्त्री-पुरुष और बच्चे निरन्तर आते रहते हैं। सभी आगन्तुकों के निवास एवं नाश्ता, भोजन, दूध आदि की समुचित व्यवस्था ऋषि उद्यान में सदा उपलब्ध रहती है। पिछले १५ दिनों में ग्वालियर, बागपत, गंगापुर, टंकारा, दिल्ली, रोहतक, जीन्द, मुक्तसर, नजीबाबाद आदि स्थानों से ९४ अतिथिगण ऋषि उद्यान पधारे।

इसी क्रम में हालैण्ड से श्री मुकेश आर्य और नेपाल से श्री राम खेलावन सिंह ऋषि उद्यान आये। श्रीमती रूपादास म्यांमार से आयी।

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से १५ नवम्बर २०१८ तक)

१. श्री मुमुक्षु मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर २. श्री बलराज सिंह, रोहतक ३. श्रीमती सरला मेहता, अजमेर ४. श्री शंकर राव भालेकर, निजामाबाद ५. श्रीमती मिथलेश आर्य, ऋषि उद्यान, अजमेर ६. श्री जिग्नेशगिरि, सोमनाथ ७. श्री जयकृष्ण, करनाल ८. श्री महादेव, नसीराबाद, अजमेर ९. श्रीमती पुष्पा झँवर, ब्यावर १०. श्रीमती मंजू चावला, बीकानेर ११. श्री धर्मवीर आर्य, सोनीपत १२. श्री प्रशान्त, दिल्ली १३. श्री विजेन्द्र, रोहतक १४. श्री रमाकान्त पारीक, जयपुर १५. श्री विजय भारती कपूर, भीलवाड़ा १६. माता लीलावती श्रीकृष्ण वैदिक कन्या इन्टर कॉलेज, खुशीपुरा, मथुरा १७. श्री निपुण शुक्ल, भीलवाड़ा १८. श्री रमेश मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर १९. गीता निकेतन आवासीय विद्यालय, कुरुक्षेत्र २०. श्री विजय सिंह गहलोत व श्रीमती कंचन गहलोत, ऋषि उद्यान, अजमेर २१. डॉ. विजयलता रस्तोगी, अजमेर २२. श्री सिद्धार्थ यादव, नई दिल्ली २३. श्रीमती लाडकँवर सेन, अजमेर २४. श्री रामेश्वर सिंह, नेपाल २५. श्री अरविन्द राठी, अलवर २६. श्री दीपक भेम, जालन्धर।

- परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(०१ से १५ नवम्बर २०१८ तक)

१. श्री कृष्ण कुमार, हनुमानगढ़ २. श्री जी. गंगाधर गुजराती, हैदराबाद ३. श्री बी. कृरुपाकर रेड्डी, मलकाजगिरि ४. श्रीमती मिथलेश आर्य, ऋषि उद्यान, अजमेर ५. चि. अन्तरिक्ष आर्य, यमुनानगर ६. श्रीमती बनवारी देवी, राजगढ़ ७. चौधरी दयाचन्द आर्य, सोनीपत ८. श्री विजय भारती कपूर, भीलवाड़ा ९. श्री जयपाल, सोनीपत १०. श्रीमती केला देवी, सोनीपत ११. श्री श्रीराम प्रजापति, अजमेर १२. माता लीलावती श्रीकृष्ण वैदिक कन्या इन्टर कॉलेज, खुशीपुरा, मथुरा १३. श्री दिनेश नवाल, अजमेर १४. श्री विजय सिंह गहलोत व श्रीमती कंचन गहलोत, ऋषि उद्यान, अजमेर १५. श्री लक्ष्मण मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर १६. श्री दिलीप पारीकर, अजमेर १७. श्री देवेन्द्र सिंह यादव, रेवाड़ी।

- परोपकारिणी सभा, अजमेर।

कल्पित संन्यासी

जब ऐषणा ही नहीं छूटी तो संन्यास क्योंकर हो सकता है? पक्षपात रहित सत्योपदेश से जगत् का कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है। अब अपने अधिकार कर्मों को नहीं करते पुनः संन्यासादि नाम धरना व्यर्थ है। नहीं तो, जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्वार्थ में परिश्रम करते हैं, उनसे अधिक परिश्रम परोपकार करने में संन्यासी भी तत्पर रहे, तभी सब आश्रम उन्नति पर रहें। जब लों वर्तमान और भविष्यत् में संन्यासी उन्नतिशील नहीं होते, तब लों आर्य्यावर्त और अन्य देशस्थ मनुष्यां की वृद्धि नहीं होती। **(स. प्र. स. ११)**

आत्म–दर्शन की प्यास किसे ?

स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती

इस संसार की रचना विचित्रताओं से परिपूर्ण है। जिसको देखकर मनुष्य की बुद्धि चकरा जाती है , वह न चाहते हुए भी बार–बार यह सोचने पर विवश हो जाता है कि अन्ततः यह गोरखधंधा है क्या? सृष्टि रचना के प्रारम्भ से ही तत्त्ववेत्ता लोग इसके रहस्य को टटोलने में लगे हैं। यह संसार कैसे बना? किसने बनाया? किस वस्तु से बनाया? किस प्रयोजन के लिए बनाया? मेरा इसमें क्या स्थान है? क्या कर्त्तव्य है और क्या नहीं? ये सारे विचार मनुष्य के मन में उत्पन्न होते रहे हैं।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में वर्णन आया है– किसी समय ब्रह्मवादी लोग एकत्रित होकर विचार करने लगे कि सृष्टि का कारण क्या ब्रह्म है या कुछ और? हम कहाँ से उत्पन्न हुए हैं ? किससे जीते हैं ? किसमें प्रतिष्ठित अर्थात् स्थित हैं? किसकी व्यवस्था में बँधे हुए हम सुख–दु:खों को बरतते हैं ?

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥

श्वे. १–१

वे विचार करने लगे कि सृष्टि का कारण ब्रह्म नहीं, तो क्या है? क्या 'काल' कारण है? तभी क्या कोई वस्तु ग्रीष्म में होती है, कोई शरद में, कोई वर्षा में। अगर काल कारण नहीं, तो क्या 'स्वभाव' कारण है? अग्नि का स्वभाव ताप है, शीतलता नहीं, जल का स्वभाव शीतलता है, ताप नहीं। क्या इसी प्रकार सृष्टि स्वभाव से बनी? अगर स्वभाव भी कारण नहीं, तो क्या 'नियति' कारण है? हम कुछ चाहते हैं, होता कुछ और है। लोग कहते हैं भाग्य को कौन मेट सकता है? अगर नियति नहीं, तो क्या 'यदृच्छा' कारण है? नियति से उल्टी यदृच्छा है। कोई नियत नियम नहीं, यों ही सब कुछ हो रहा है? ये भी नहीं, तो क्या 'पंचमहाभूत' कारण हैं? पंचभूत नहीं, तो क्या योनि कारण है, अर्थात् माता–पिता ही कारण हैं, पुत्र पिता से, वह अपने पिता से, यही परम्परा चली आ रही है? ये भी नहीं, तो क्या पुरुष, अर्थात् यह आत्मा कारण है? ये सब अलग–अलग नहीं, तो क्या इन सबका संयोग कारण है? उत्तर देते हैं, नहीं, इनमें से कोई भी कारण नहीं। ये सब कारण चिन्त्य हैं, विचार कोटि के हैं, सन्देहास्पद हैं। क्यों ? **अनात्मभावात्।**

क्योंकि इनमें आत्म-भाव नहीं है, ये स्वयं जड़ हैं। तो फिर क्या पुरुष–अर्थात् आत्मा–जीवात्मा सृष्टि का कारण है, उसमें तो आत्म–भाव है? इसका भी उत्तर देते हैं, नहीं, यह भी कारण नहीं, क्योंकि अगर जीवात्मा सृष्टि का कारण हो, तो उसे सुख–दु:ख कौन देगा? जीवात्मा को सुख–दु:ख तो होता है। वह स्वयं अपने को सुख–दु:ख देने के लिए सृष्टि की रचना क्यों करने लगा? इस प्रकार ये आठों सृष्टि के कारण नहीं।

ब्रह्माण्ड का कारण ब्रह्म है–

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥

श्वे. १–२

तब वे ध्यान–योग के पीछे चले और देखा कि उस देव की आत्म–शक्ति इतनी महान् है कि दीखती नहीं।

वही देव काल से लेकर आत्मा तक जिन आठ का ऊपर उल्लेख किया गया है, इन सब कारणों का अकेला अधिष्ठाता है।

कण्डिका १

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के सृष्टिविद्या-विषय में इस रहस्य को बड़े विस्तार के साथ सुलझाया है। हम कुछ उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं–

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमाऽपरो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥

अर्थात् जब यह कार्यसृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी, तब एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण अर्थात् जगत् बनाने की सामग्री विराजमान थी। उस समय 'असत्' शून्य नाम आकाश अर्थात् जो नेत्रों से देखने में नहीं आता, सो भी नहीं था, क्योंकि उस समय उसका व्यवहार नहीं था। उस काल में 'सत्' अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण मिला के जो प्रधान कहलाता है, वह

भी नहीं था। उस समय परमाणु भी नहीं थे तथा विराट् अर्थात् जो सब स्थूल जगत् के निवास का स्थान है, वह भी नहीं था। जो यह वर्तमान जगत् है, वह भी अनन्त शुद्ध ब्रह्म को नहीं ढाँप सकता है और उससे अधिक वा अथाह भी नहीं हो सकता, जैसे कोहरे का जल पृथिवी को नहीं ढाँप सकता है, उस जल से नदी में प्रवाह भी नहीं चल सकता, और न वह कभी गहरा वा उथला हो सकता है। इससे क्या जाना जाता है कि परमेश्वर अनन्त है और जो यह उसका बनाया जगत् है, सो ईश्वर की अपेक्षा से कुछ भी नहीं हैं।

हिरण्यगर्भ: समवर्त्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(ऋ१०-१२१-१)

हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है, वही एक सृष्टि के पहिले वर्त्तमान था। जो इस जगत् का स्वामी है और वही पृथिवी से ले के सूर्यपर्यन्त सब जगत् को रच के धारण कर रहा है। इसलिये उसी सुखस्वरूप परमेश्वर देव की ही हम लोग उपासना करें, अन्य की नहीं।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमान: सचन्त यत्र पूर्वे साध्या: सन्ति देवा:॥

(ऋ१०-९०-१६)

विद्वानों को देव कहते हैं और वे सबके पूज्य होते हैं, क्योंकि वे सब दिन परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना, उपासना और आज्ञापालन आदि करते हैं। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि वेदमन्त्रों से प्रथम ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना करके शुभ कर्मो का आरम्भ करें। जो-जो ईश्वर की उपासना करने वाले लोग है, वे-वे सब दु:खों से छूट के सब मनुष्यों में अत्यन्त पूज्य होते हैं ।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहित:॥

जो परमात्मा विद्वानों के लिये सदा प्रकाशस्वरूप है, अर्थात् उनके आत्माओं को प्रकाश में कर देता और वही उनका पुरोहित अर्थात् अत्यन्त सुखों से धारण और पोषण करने वाला है, इससे वे फिर दु:खसागर में कभी नहीं गिरते।

उपरोक्त महर्षि दयानन्द सरस्वती के उद्धरण देने का हमारा प्रयोजन संसार के तीन प्रमुख तत्त्व-ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति को प्रस्तुत करना था, जिसमें से हम आत्मा को साथ लेकर इस निबन्ध की यात्रा को निर्धारित लक्ष्य अर्थात् मोक्ष तक पहुँचाने में सफल हो सकें, क्योंकि हमारे निबन्ध के प्रतिपाद्य विषय का वह प्रमुख अंग है ।

इन्हीं तीनों तत्त्वों की पुष्टि में हम वेद तथा उपनिषद् के कुछ और प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।

(ऋ. १-१६४-२०)

अर्थात् दो पक्षी, सुन्दर पंखोंवाले, साथ-साथ जुड़े हुए, एक-दूसरे के सखा हैं। वे एक ही वृक्ष को सब ओर से घेरे हुए हैं। उनमें से एक वृक्ष के फल को बड़े स्वाद से चख रहा है, दूसरा बिना चखे सब कुछ देख रहा है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी बड़े विस्तार से वर्णन आया है, कुछ उद्धरण दे रहे हैं-

उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीणा ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ता:॥

(श्वेत. उप. १-७)

हमने यह जो-कुछ गाया, वह परम-ब्रह्म-चक्र का गीत गाया। इस ब्रह्म-चक्र में ईश्वर, जीव, प्रकृति ये तीन अक्षर, अर्थात् अविनाशी तत्त्व सुप्रतिष्ठित हैं। ब्रह्मवित् लोग इन तीनों में अन्तर को, भेद को, जानकर, ब्रह्म में लीन होकर, उसी में तत्पर होकर, योनि से, अर्थात् जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीश:।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशै:॥

(श्वेत. उप. १-८)

प्रकृति को अभी 'अक्षर-अविनाशी' कहा, परन्तु वह 'क्षर-विनाशी' भी है। कारणरूप में वह 'अक्षर' है, कार्यरूप में, पृथिव्यादि रूप में वह 'क्षर' है। उसका अक्षररूप 'अव्यक्त' है, क्षर रूप 'व्यक्त' है, दीखता है। विश्व के इन 'क्षर-अक्षर', 'व्यक्त-अव्यक्त' दोनों रूपों को 'ईश' पालता है। जीवात्मा 'अनीश' है, वह संसार के भोग में पड़ जाता है और भोगों में पड़ जाने के कारण उन्हीं से बन्ध जाता है। जब जीवात्मा 'देव' के दर्शन कर लेता है, तब सब प्रकार के पाशों से, बन्धनों से मुक्त हो जाता

है।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

(श्वेत. उप. ४-५)

एक अजा लाल, सफेद, काले रंग की है, जो अपने ही रंग-रूप वाली अनेक प्रजाओं का सर्जन कर रही है। एक अज है, जो उस अजा के साथ प्रीति करता है, उसके साथ सो जाता है, एक दूसरा अज है, जो भुक्त-भोगा अजा को छोड़ देता है। अज का अर्थ है, अ+ज=जो पैदा नहीं होता, अजन्मा, अनादि है। तीन अ+ज, अर्थात् अनादि हैं, एक भोग्य=सत्त्व, रज, तम-रूपी अजा=प्रकृति, दूसरा भोगने वाला अज=जीवात्मा, तीसरा न भोगने वाला अज=परमात्मा। जीवात्मा प्रकृति में रम जाता है, परमात्मा नहीं रमता।

उपरोक्त इन उद्धरणों में जीवात्मा, परमात्मा तथा प्रकृति इन तीन अनादि पदार्थों का वर्णन है, जो इस लेख की पृष्ठभूमि है।

कण्डिका २

अब हम 'आत्मा' के स्वरूप के बारे में जानने का प्रयत्न करते हैं।

खण्ड १

गौतम मुनि के न्यायदर्शन के भाष्यकार वात्स्यायन ने प्रथम सूत्र-'प्रमाणप्रमेय...धिगमः' के भाष्य में कहा है-

(१) **'आत्मादेः खलु प्रमेयस्य तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः'** अर्थात् आत्मा, शरीर इत्यादि जानने योग्य (प्रमेय) पदार्थों के यथार्थ ज्ञान से ही निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

(२)**'दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात्'** (न्याय. ३-१-१) अर्थात् देखना, स्पर्श करना ये भाव (धर्म) भावना (धर्मी) की अपेक्षा करते है। जिससे अनेक चक्षु, त्वचा आदि इन्द्रियोंरूप कारणों (साधन) वाला, रूपादि अनेक विषयों को देखने वाला कोई चेतन (जानने वाला) **आत्मा** है-यह सिद्ध होता है।

(३) **'सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात्'** (न्याय. ३-१-७) हम दोनों आँखें बन्द करते हैं। किसी एक वस्तु को बांयी आँख से देखा, पुनः उसी को दाँयी से देखा और ज्ञान बन रहा है कि जिसको बाँयी आँख से देखा था, उसी वस्तु को दाँयीं आँख से देखा। इन दोनों आँखों के ज्ञान को जोड़ने वाला तीसरा चेतन पदार्थ **आत्मा** सिद्ध होता है।

(४) **'इन्द्रियान्तरविकारात्'** (न्याय. ३-१-१२) हमने कभी आम खाया था, मिष्टान्न खाया था, जो बहुत स्वादिष्ट था। कालान्तर में वही भोग्य वस्तु दिखाई दी तो मुँह में पानी भर आया। यह देखा आँखों से, लार आयी मुँह में। अतः इन दोनों के ज्ञान को जोड़ने वाला तीसरा चेतन पदार्थ आत्मा सिद्ध होता है।

खण्ड २

कपिल मुनि ने सांख्य दर्शन में कहा है- **'शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान्'** (सांख्य.१-१३९) शरीर आदि से= शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण से तथा भूतभौतिकों प्रकृतिपर्यन्त पदार्थों से भिन्न पुरुष है। उसमें सामष्टिक पुरुष विशेष ईश्वर और शरीर के अन्दर रहने वाला जीवात्मा पुरुष भी भिन्न है। उसमें हेतु यह है -**'त्रिगुणादि विपर्ययात्'** (सांख्य.१-१४१) अर्थात् सत्त्व, रज, तम तीन गुण तथा आदि शब्द से जड़त्व पुरुष के अधीन ग्रहण किये जाते हैं। इनके विपर्यय से पुरुष में कहे धर्मों के विपरीतत्व=अभाव और भिन्न धर्मों =चेतनत्व आदि का भाव है, अतः शरीर आदि से भिन्न पुरूष है। पुनः आगे कहा है-**'न भूत चैतन्यं प्रत्येकानुपलब्धेः सांहत्ये च'** (सांख्य. ५-१३०) भूतों के मेल हो जाने पर जो देह बने उनमें भूतों का चैतन्य नहीं है।

'अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात्' (सांख्य. ६-१) देह में चैतन्य के वर्तमान होने से उसमें आत्मा है। आत्मा के नास्तित्व साधन के अभाव से आत्मा है।

इसका हेतु कहते हैं-**'देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात्'** (सांख्य. ६-२) वह देह में होता हुआ भी देह अन्तःकरण इन्द्रियों से स्वरूपतः भिन्न है। क्योंकि विलक्षण होने से, देह तो बाल्य, कौमार्य, यौवन, वार्धक्य परिणाम को ग्रहण करता है। देह बाल्य आदि अवस्थाओं में परिणाम को प्राप्त होता है , वैसा आत्मा नहीं।

दूसरा हेतु कहते है-**'षष्ठीव्यपदेशादपि'** (सांख्य. ६-३) षष्ठी विभक्ति के सम्बन्ध व्यवहार से भी देह

आदि से भिन्न आत्मा सिद्ध होता है, कि मेरा देह, मेरा मन , मेरी आँख। यथा–'**उत स्वया तन्वा सं वदे**....' (ऋ. ७–८६–२)=अपनी देह से संवाद करता हूँ, '**तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु**' (यजु. ३४–१) = मेरा मन शिवसङ्कल्प वाला हो।

'**चक्षुर्मे पाहि**' (यजु. २–१६)= मेरी आँख की रक्षा कर, इत्यादि भेदव्यवहार देह आदि से भिन्न आत्मा को सिद्ध करता है।

खण्ड ३

१. कणादमुनि ने वैशेषिक दर्शन में कहा है– '**इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः।**' (वैशेषिक.३–१–२) अर्थात् इन्द्रिय और अर्थों के सम्बन्ध की उक्त जानकारी इन्द्रिय और उसके विषयों से भिन्न किसी अर्थतत्त्व को सिद्ध करती है। आगे भाष्यकार उदयवीर शास्त्री ने इसे स्पष्ट किया है– ज्ञान का कर्त्ता व आश्रय देह नहीं, क्योंकि वह जड़ है, अचेतन है, ज्ञानरहित है। मन भी इसका आश्रय संभव नहीं, क्योंकि वह स्वयं करण है। जैसे इन्द्रियाँ विषयग्रहण अर्थात् विषयज्ञान के बाह्य साधन हैं , ऐसे मन आन्तरिक साधन है । तब देह, इन्द्रिय और मन से अतिरिक्त एक ऐसे द्रव्य को मानना पड़ता है, जो इस प्रकार के ज्ञान का कर्त्ता व आश्रय है। ज्ञानाश्रय होने से वह चेतन तत्त्व आत्मा है।

२ चरक संहिता में वर्णन आया है–

'**शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्**' (चरक सं. सूत्रस्थानम् १–४२)

अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, सत्त्व=मन और आत्मा इनका संयोग अर्थात् एक साथ व्यवस्थित रहना 'आयु' कहाता है।

सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतस्त्रिदण्डवत्। सत्त्व (चित्त, मन), आत्मा और शरीर ये तीनों त्रिदण्ड अर्थात् पानी का घड़ा रखने के लिये तीन पाये की बनी तिकटी =तिपाई के समान है।

दूसरा वर्णन बुद्धि, इन्द्रिय, मन और आत्मा का आया है–

बुद्धीन्द्रियमनोर्थानां विद्याद्योगधरं परम् ।
चतुर्विंशक इत्येष राशिः पुरुषसंज्ञकः ॥

(चरक सं.–शारीरस्थानम् १–३५)

अर्थात् बुद्धि, इन्द्रिय, मन और बाह्य विषय, इन सबके परस्पर संयोग को बनाने वाला, सबके संयोग का आश्रय , इन सबसे सूक्ष्म, परचेतना धातु= आत्मा है। यही चौबीस की राशि=समूह 'पुरुष' नाम से कहा जाता है। बुद्धि=महत्, अहंकार, पाँच तन्मात्रा, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन और पाँच शब्द आदि विषय वा पाँच महाभूत ये सब तथा २४ वाँ आत्मा=चेतनारूप धातु ये सब २४ हैं।

३. कौषीतकि ब्राह्मण में कहा है–'**आत्मा वै पंचविंशः**'(कौ. ब्रा. १७–७) = आत्मा पंचविंश समुदाय वाला है।

चतुर्विंशतित्त्वयुत आत्मा।

ऐतरेयारण्यक में कहा है–'**पंचविंशः आत्मा पंचविंशः प्रजापतिः।' दश हस्त्या अंगुलयो दश पाद्या द्वा ऊरू द्वौ बाहू, आत्मैव पंचविंशः।** (ऐतरेयारण्यके १–१–४)

४. आत्मा और इन्द्रियों के संदर्भ का यह वेदमन्त्र देखिये–

समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः।
पदमेकस्य पिप्रतः॥

(ऋ. ९–१०–७)

अर्थात् आँख, नाक, कान, स्पर्श, जिह्वा, मन तथा बुद्धि अथवा आँख, नाक, कान, स्पर्श, जिह्वा, हाथ और पैर ये सात जामि= भोगसाधन हैं। ये इन्द्रियाँ लेती भी हैं और देती भी हैं। आँख रूप का ज्ञान आत्मा को देती है, कान शब्द आत्मा के पास पहुँचाता है, नाक गन्ध का ज्ञान कराती है, जिह्वा रस देती है, स्पर्श सर्दी–गर्मी , सख्ती–नरमी का पता कराती है (मन के माध्यम से) इत्यादि। अन्नपानादि से ये अपना–अपना भोग लेती है। भोजन न मिले तो आँख, नाक आदि की तो बात क्या, स्मृति भी नष्ट हो जाती है। दीर्घ उपवास करने से यह बात स्पष्ट होती है। इसी से इनको 'होतारः' कहा है। इनका लक्ष्य है आत्मा के ठिकाने की, प्राप्तव्य की रक्षा करना।

५. भगवान् यास्क ने निरुक्त में आत्मा की व्याख्या निम्न प्रकार से की है–

आत्माऽततेर्वा, आप्तेर्वा, अपि वा आप्त इव
स्याद्यावद्व्याप्तीभूत इति।

(निरुक्त ३-३-१५)

आत्मन्-(क) अत सातत्यगमने से 'मनिन्' (उणा. ४-१५३) से आत्मा-सतत गतिमान्, अर्थात् सक्रिय है।

(ख) आप्लृव्याप्तौ धातु से मनिन्, आप्-मन्=आत्मन्। परमात्मा सर्वव्यापक है। **(ग)** अथवा आप्लृ=व्याप्तौ धातु से मनिन् प्रत्यय करने पर आत्मन् शब्द जीवात्मा का वाचक भी है। यह व्याप्त तो नहीं परन्तु जितना व्याप्तीभूत है, उससे यह व्याप्त सा है। अर्थात्, जीव जिस छोटे या बड़े शरीर में विद्यमान् रहता है, उस शरीर के रोम-रोम में जीवात्मा की शक्ति व्यापक रहती है, अतः जीवात्मा को अणु मानते हुए भी विभु कहा गया।

निरूक्त में ही यास्क के निम्न वेदमन्त्र का भाष्य देखिये--

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्राविवेश॥

(ऋ. १-१६४-२१)(निरुक्त ३-३-१२)

इस मन्त्र के अधिदैवत तथा अध्यात्म दोनों प्रकार से अर्थ किये हैं। इसका अध्यात्म अर्थ देखिये-

"जिस आत्मा में पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान के भाग को निरन्तर अपनी सत्ता से तपाती हैं, या उसे पहुँचाती हैं, वह ऐश्वर्यशाली, सर्व इन्द्रियों का रक्षक और धीर परमात्मा मुझ अल्पमति के उस आत्मा में प्रविष्ट हो।"

सुपर्ण = इन्द्रियाँ, यतः ज्ञान प्राप्त कराने के कारण इनकी गति सुखकारी है। अमृत=ज्ञान। पाक=जीवात्मा, यह पक्तव्य बुद्धिवाला, अर्थात् अल्पज्ञ है; और आत्मा = सर्वव्यापक परमात्मा- विपक्वप्रज्ञ अर्थात् सर्वज्ञ है।

कंडिका २ खंड ३ में आत्मा, इन्द्रिय और शरीर आदि की महत्ता का वर्णन हुआ है।

कंडिका ३

अब प्राणों तथा जीवात्मा के सम्बन्ध की महिमा का वर्णन कर रहे हैं-

१ **'एकादशभिरस्तुवत'** (यजु. १४ -२९) महर्षि दयानन्द ने इस मन्त्रांश का अर्थ किया है- "दस प्राणों और ग्यारहवें आत्मा से स्तुति करो।"

२. शतपथ ब्राह्मण में महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी इस मन्त्रांश की व्याख्या की है-**'दश प्राणा द्वै प्रतिष्ठेऽआत्मा'** अर्थात् दस प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा। (शतपथ. ८-४-३-९)

यथार्थ में देखा जाए तो प्राणों के कारण ही तो आत्मा की शोभा है, चमक है। इस बात का ऋग्वेद में बड़ी गहराई से वर्णन किया है-

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र (ऋ. ५-३-३) अर्थात् हे रुद्र = आत्मन्! मरूतः =प्राण तव =तेरी

श्रिये =शोभा के लिये तुझे मर्जयन्त =चमकाते हैं।

३. चरक संहिता में भी प्राणों की महिमा का उल्लेख हुआ है:-

"**प्राणवर्धनानामुत्कृष्टतममेकम्**" (चरक संहिता सूत्र स्थान-३०-१५) अर्थात् प्राण (आयु) को बढ़ाने वाले पदार्थों में से सर्वोत्तम है।

कण्डिका ४

आत्मा की स्थिति

अब हमें यह देखना है कि 'आत्मा' मनुष्य के शरीर में सर्वव्यापक है अथवा किसी एक स्थान में रहता है?

खंड १.

१. छान्दोग्योपनिषद् कहता है-"**स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तम्**" (छा. उ. ८-३-३) अर्थात् वह यह आत्मा हृदय में है, उसका यह ही निर्वचन है।

२. चरक संहिता में कहा है-"**आत्मनः श्रेष्ठतममायतनं हृदयम्**" (चरक निदान स्थान ८-४) अर्थात् आत्मा का श्रेष्ठ स्थान हृदयप्रदेश है। वस्तुतः 'हृदय' शब्द के कई अर्थ होते हैं, यह वैदिक वाङ्मय से भलीभाँति विदित है। यहाँ दो अर्थ ही दिये जा रहे हैं-एक मस्तिष्क और दूसरा रक्त संवाहक यन्त्र।

3. मस्तिष्क वाचक हृदय शब्द के उदाहरण रूप में अथर्ववेद का यह मन्त्र प्रस्तुत है-"**इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि॥**" (अथर्व. १९-९-५) अर्थात् ब्रह्मणा=आत्मा के साथ, हृदि=हृदय में, यानि इमानि = जो ये, पंचेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि= मन सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, संशितानि=स्थित हैं। यहाँ पर 'हृत्' शब्द मस्तिष्क के लिये आया हुआ है, क्योंकि इन्द्रियों का सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है, यह सर्वविदित है और वही मस्तिष्क= हृदय आत्मा का स्थान

है।

४. अथर्ववेद के १० वें काण्ड के २६ वें सूक्त के मन्त्र में बहुत स्पष्ट शब्दों में मस्तिष्क को हृदय बताया है–

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्। मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः॥ (अथर्व. १०-२-२६) अर्थात् पवमानः=शुद्धरूप, अथर्वा=निश्चल परमात्मा, अस्य=इसके (मनुष्य के), मूर्धानम्=सिर, च=और, यत्=जो, हृदयम् =हृदय (मस्तिष्क है) उसे, संसीव्य=आपस में सीकर, मस्तिष्कात्=मस्तक बल से, ऊर्ध्वः=ऊपर लेकर, शीर्षतः अधि=सिर के ऊपर, प्र ऐरयत्=बाहर निकल गया। तात्पर्य हुआ–"परमात्मा ने मनुष्य के शिर और हृदय=मस्तिष्क को नाड़ियों द्वारा आपस में सिलकर=जोड़कर विवेक सामर्थ्य दिया है, परन्तु मनुष्य की समझ=विवेक से बाहर है।"

यहाँ हम देखें कि मंत्र में सिर और हृदय का मेल बताया जा रहा है। रक्त संवाहक हृदय का तो सिर से क्या, पूरे शरीर से मेल है। अतः यहाँ हृदय से मस्तिष्क ही लेना है, क्योंकि विवेक तो मस्तिष्क ही देता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आत्मा मस्तिष्क में रहता है, पूरे शरीर में नहीं, यह उपरोक्त वैदिक प्रमाणों से सिद्ध होता है।

५. इस सम्बन्ध में महाभारत का भी उदाहरण प्रस्तुत है–

श्रितो मूर्धानमात्मा तु शरीरं परिपालयन्। प्राणो मूर्धनि चाग्नौ च वर्तमाने विचेष्टते॥ (महा. शांतिपर्व ६३-१००)

अर्थात् आत्मा मस्तक के रन्ध्र-स्थान में स्थित होकर सारे शरीर की रक्षा करता है तथा प्राण मस्तक और अग्नि दोनों में स्थित होकर शरीर को चेष्टाशील बनाता है।

कण्डिका ५

आत्मा और परमात्मा की स्थिति

खण्ड १

वेदान्त दर्शन में आया है–**गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्** (वेदान्त दर्शन १-२-११) अर्थात् गुहां =हृदयरूपी गुहा में, प्रविष्टौ =रहने वाले, आत्मानौ= इस पद में द्विवचन का प्रयोग होने से जीवात्मा और परमात्मा का ग्रहण किया जाना ही उचित है।

कठोपनिषद् में यमाचार्य कहते हैं–"**ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे, छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति**"=(कठ. ३-१) अर्थात् ऋतं पिबन्तौ =यथार्थ ज्ञान को पीते वा जानते हुए, पुण्यकर्मों से प्राप्त मनुष्य जन्म में, बुद्धि में रहने वाले श्रेष्ठ दोनों =जीवात्मा और परमात्मा (छाया और धूप के समान) हृदयप्रदेश में (रहते हैं) ऐसा ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी वर्णन आया है–"**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति।**" (गीता १८-६१) अर्थात् हे अर्जुन! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय प्रदेश में बैठा हुआ है।

शेष भाग अगले अंक में....

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान में अष्टाध्यायी अनुक्रम से संस्कृत व्याकरण, दर्शन एवं अन्य ऋषिकृत ग्रन्थों की कक्षाएँ प्रारम्भ हो रही हैं। अध्ययन आर्ष पाठविधि से कराया जायेगा। विद्यार्थियों के आवास एवं भोजनादि का सम्पूर्ण व्यय सभा की ओर से किया जायेगा। गुरुकुल सम्बन्धी सभी नियमों एवं दिनचर्या आदि का पालन अनिवार्य होगा। विद्यार्थी की आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो। इच्छुक छात्र निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें।

आचार्य विद्यादेव,
महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल,
ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग,
अजमेर-३०५००१ (राज.)
सम्पर्क-९८७९५८७७५६, ०१४५-२४६०१६४, Email- psabhaa@gmail.com

पाठकों के विचार

अनेकता में एकता का दावा एक बड़ा छल है

भाषा के आधार पर अलग-अलग प्रान्त, मजहब के आधार पर अलग-अलग कानून, जातपाँत के आधार पर अलग-अलग सुविधाएँ-ये व्यवस्थाएँ देश को जोड़ नहीं रही हैं, अपितु बाँट रहीं हैं। इनके कारण विषमता, द्वेष और लड़ाई-झगड़े बढ़ रहे हैं। ऐसी विषमताओं को '**अनेकता में एकता**' का नाम देना देश के लोगों के साथ एक बड़ा छल है।

एक मजहब वालों पर आप उनके तथाकथित पवित्र स्थान पर जाने के लिए करदाताओं का अरबों रुपया खर्च कर रहे हैं तो क्या उन करदाताओं को दर्द नहीं होता? एक जाति वालों को ४० प्रतिशत अंक आने पर आप डॉक्टर बना देते हैं और ऊँचे पदों पर बिठा देते हैं, दूसरी तरफ ८० प्रतिशत अंक वालों को आप बाहर रख रहे हैं तो उनके मन में द्वेष पैदा नहीं होता क्या? देशहित में आवश्यक है कि जनसंख्या-वृद्धि पर नियन्त्रण लगाया जाए, पर एक मजहब वाले कहते हैं कि उनके मजहब में सन्तान निरोधन की मनाही है। उस मजहब के लोगों के नाराज होने के डर से कोई भी राजनैतिक दल अब जनसंख्या-वृद्धि पर नियन्त्रण की बात नहीं कर रहा। एक मजहब वाला आदमी एक साथ चार तक पत्नियाँ रख सकता है जबकि दूसरे मजहब वाला एक से अधिक पत्नी नहीं रख सकता, इसलिए दूसरी पत्नी रखने के लिए वह आदमी मजहब बदल लेता है। एक मजहब वालों को अपने साथ तलवार रखने का कानूनी अधिकार है जो कहने को तो मजहबी चिह्न है, पर जरूरत पड़ने पर वह हथियार है, दूसरे मजहब वालों को यह अधिकार नहीं है। उत्तर भारत के लोग दक्षिण भारत में जाते हैं, पूर्व के पश्चिम में जाते हैं आदि, अलग-अलग भाषाओं के कारण बोल-चाल आदि व्यवहार में समस्याएँ आती हैं, तो क्या ये सब विषमताएँ एकता के चिह्न हैं। जो लोग कहते हैं कि ये विभिन्नताएँ एकता के चिह्न हैं उनकी बुद्धि और नीयत पर शक होता है। देश की एकता केवल सरहद पर तैनात वीर नौजवान सैनिकों के कारण है, देश में अनेकता के कारण नहीं।

अनेकता व्यक्तिगत विषयों में रहती है जैसे कोई व्यक्ति कब सोता है, कब जागता है, क्या खाता है, क्या पहनता है, क्या काम-धन्धा करता है आदि। इस प्रकार के व्यक्तिगत विषयों में सब स्वतन्त्र रहते हैं। परन्तु सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों में न स्वतन्त्रता होती है और न ही विषमता रहती है। देश के सभी कानून, सभी व्यवस्थाएँ देशहित में सभी के लिए समान रूप में होनी चाहिएं जैसे सड़क पर बाईं और चलने का नियम सबके लिए एक-सा है। कोई भी कानून या व्यवस्था किसी मजहब, जातपाँत या प्रान्त के आधार पर न हो। सारे देश में राष्ट्रभाषा पढ़ाई जानी चाहिए और सभी प्रान्तीय सरकारों की और केन्द्र की भाषा राष्ट्रभाषा ही होनी चाहिए। स्थानीय तौर पर अन्य भाषाएँ पढ़ी/पढ़ाई जा सकती हैं। देश में सभी कानून मानवता और समता के आधार पर बने हों। किसी भी मजहब के लिए सरकार की तरफ से कोई भी धन व्यय न किया जाए। हज सब्सिडी पूरी तरह बन्द हो। देशहित में भूमि की सुरक्षा के लिए मुर्दा गाड़ने पर प्रतिबन्ध लगे। जनसंख्या नियन्त्रण के लिए प्रभावी कानून बनाया जाए। सभी को अपनी योग्यता बढ़ाने के और अपनी योग्यता के अनुसार आगे बढ़ने के अवसर समान रूप से उपलब्ध हों। जन्म की, जातपाँत की और ऊँच-नीच की भावना को पूरी तरह समाप्त किया जाए। तभी देश में प्रेम, सद्भाव और देशभक्ति पनप सकती है। अतः एकता में ही एकता है, अनेकता में तो विघटन है।

कृष्णचन्द्र गर्ग, ८३१ सैक्टर १०, पंचकूला, हरियाणा

पाठकों की प्रतिक्रिया

माह सितम्बर एवं अक्टूबर-२०१८ के अंकों में पं. नारायण प्रसाद बेताब एक अलभ्य, महर्षि के अद्भुत दीवाने योद्धा के रोमांचकारी कार्यों सहित विवरण प्रस्तुत करने के लिए प्रभाकर जी को धन्यवाद।

शिवप्रसाद आर्य, बाँदा

श्री ओम्मुनि जी, सादर नमस्ते।

परोपकारी अक्टूबर प्रथम में आपकी 'मेरे मन की व्यथा' पढ़ा। मैं हर वर्ष रु. २०००/- सभा द्वारा चलाए जा रहे प्रकल्पों के सहायतार्थ भेजना रहेगा।

शुभकामनाएँ।

डॉ. कृष्णलाल डंग, पावटा साहिब, जि. सरमौर, हि.प्र.

शङ्का समाधान – ३८

डॉ. वेदपाल

शङ्का– अश्वमेध यज्ञ पर आर्यसमाज ने कोई विधान-पुस्तक लिखी है, अब तक?

-शैलेन्द्र त्यागी

समाधान- अपनी शंका की मूल पंक्तियों में आपने स्वयं को यज्ञ-विशेषज्ञ लिखा है। अत: यज्ञीय विषय आपको ज्ञात होंगे। यहाँ जिज्ञासु जनों की दृष्टि से संक्षिप्त समाधान प्रस्तुत है-

यज्ञ अपने कर्मकाण्डीय विस्तार की दृष्टि से संस्थात्रय (हवि:संस्था, सोमसंस्था, पाकसंस्था) में विभक्त है। इसके अतिरिक्त पञ्चमहायज्ञ तथा संस्कार के समय भी यज्ञ कर्त्तव्य कर्म है। प्रत्येक संस्था में प्रामुख्येन सात-सात यज्ञ हैं। पुन: इनके अवान्तर भेद हैं।

यज्ञ श्रौत एवं स्मार्त इस द्विविध रूप में वर्णित हैं। श्रौतयज्ञों में अग्न्याधान, अग्निहोत्र..., अग्निष्टोम..., राजसूय, अश्वमेध आदि परिगणित हैं। इनके कुछ सूक्ष्म भेद हैं, जिनके कारण इनकी संख्या न्यूनाधिक रूप में वर्णित की जाती रही है। तद्यथा- जिस व्यक्ति ने वाजपेय कर लिया है, वह राजसूय नहीं करता है। इसी प्रकार **अश्वमेध का अधिकारी-सार्वभौम क्षत्रिय राजा है-**

(१) राज्ञोऽश्वमेध: सर्वकामस्य

- कात्यायन श्रौ. सू. २.१.१

(२) राजाश्वमेधेन यजेत

- सत्याषाढ़ श्रौ. सू. १४.१.१

(३) अश्वमेधेन यजते सर्वान्कामानाप्नोति सर्वा व्युष्टीर्व्यश्नुते

- शांखायन श्रौ. सू. १६.१.१

राजा द्वारा सम्पाद्य होने से इसमें वैभव का प्रदर्शन भी होता है। इसके सम्पादन में एक वर्ष से भी अधिक समय लगता है। एतदर्थ देवयजन निर्माण, श्रेष्ठ अश्व (ययु) का रक्षकों के साथ छोड़ना, यजमान द्वारा सायं अग्निहोत्र के अनन्तर महिषी, वावाता आदि रानियां अपनी अनुचरियों के साथ देवयजन में शयन करती हैं। इस अवधि में संयमित जीवन अनिवार्य है।

अश्वमेध के समय (एक वर्ष की अवधि में) पूर्णाहुति हवन, **पथिकृद् इष्टि-'पुरोडाशोऽग्नये पथिकृते'**

- का. श्रौ. २०.१.२१,

पौष्णचरु याग-'पौष्णं चरुं निर्वपति, वास: शतं दक्षिणा'

- का. श्रौ. २०.१.२४, **रश्नाञ्जन** आदि अनेक कर्त्तव्य कर्म हैं।

अश्व का **प्रोक्षण, संज्ञपन, यूपनिर्माण** एवं **स्थापन** इनकी संख्या एवं **निर्माण द्रव्य काष्ठ** तथा **उनकी अवस्थिति** का क्रम अति महत्त्वपूर्ण है। साथ ही अश्व का यूप नियोजन तथा उस अश्व से बाँधे जाने वाले पशुओं (इनमें सर्प, सिंह आदि वन्य पशु भी हैं।) का संयोजन आदि सुनिश्चित हैं।

अश्वमेध की उक्त तथा अनुक्त क्रियाओं के जटिल, समय एवं व्यय साध्य होने से इनका शास्त्रानुकूल आयोजन अति कठिन है। साथ ही इसकी प्रक्रिया का ज्ञान भी श्रौत सूत्रों के गहन अध्ययन के बिना सम्भव नहीं है। किसी विधान-पुस्तक का निर्माण उसकी आवश्यकता/पाठक की माँग तथा लेखक की क्षमता पर निर्भर करता है। इस विषय के जिज्ञासु पाठक कितने हैं? क्या कोई व्यक्ति इस प्रभूत व्यय एवं काल साध्य यज्ञ का आयोजन कराने का भी इच्छुक है? कुछ वर्ष पूर्व लातूर (महाराष्ट्र) में आयोजित **'ब्रह्मवर्चस् सोमयाग'** (इसके निमित्त आयोजकों ने लगभग पचपन लाख की राशि संग्रहीत की थी।) में हमें इसके शास्त्रीय पक्ष पर विचार प्रस्तुत करने के लिए निमन्त्रित किया गया था। अश्वमेध उससे भी अधिक काल एवं व्यय साध्य है।

आपने स्वयं को यज्ञ-विशेषज्ञ लिखा है तो यह आप जानते ही होंगे कि इस विधा में निष्णात विद्वज्जन कितने हैं? प्रचलित यज्ञों में आर्त्विज्य और श्रौतयज्ञ सम्पादन में आकाश-पाताल का अन्तर है। हिन्दी में शास्त्रीय विधि-विधान युक्त कोई पुस्तक हमारी दृष्टि का विषय नहीं बनी है।

-जागृति विहार, मेरठ

योगदर्शनकार पतञ्जलि के अनुसार योग की परिभाषा भाष्यकारों के सन्दर्भ में

डॉ. महावीर मीमांसक

पातञ्जल योगदर्शन के प्रथम पाद (समाधि पाद) का प्रथम सूत्र "**अथ योगानुशासनम्**" के बाद द्वितीय सूत्र योग की परिभाषा देता है "**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**" जिसका सीधा अभिप्राय है कि योग चित्तवृत्तियों के निरोध को कहते हैं, अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोक लेना योग कहलाता है। इतने सरल शब्दों में योग की परिभाषा प्रस्तुत करना यह महर्षि पतञ्जलि की आर्ष बुद्धि का ही चमत्कार है।

कुछ प्राचीन संस्कृत के भाष्यकारों तथा उनके अनुकरण पर आधुनिक हिन्दी भाषा में भाष्य करने वालों ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि योग से यहां अभिप्राय सभी चित्त की वृत्तियों का निरोध करना नहीं है अपितु यदि एक चित्तवृत्ति चित्त में रहती है तो भी वह योग की परिभाषा पतञ्जलि मुनि के अनुसार मानी जायेगी अर्थात् चित्त की एक वृत्ति के रहते हुए भी योग की परिभाषा के अन्तर्गत आ जायेगा। चित्त की सभी वृत्तियों का सम्पूर्ण निरोध करना इस सूत्र में अभिप्रेत नहीं है। व्याख्याकारों के इस मत की समीक्षा पतञ्जलि के योगदर्शन के अन्य एतत्सम्बन्धी सूत्रों के आधार पर हम यहां प्रस्तुत करते हैं।

पातञ्जल योगदर्शन के इसी प्रसङ्ग के पाँचवें सूत्र में कहा गया है –

'वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः'

अर्थात् चित्त की वृत्तियाँ पांच प्रकार की होती हैं जो क्लेशदायक भी हो सकती हैं और क्लेशदायक नहीं भी हो सकती हैं। ये पाँच प्रकार की चित्तवृत्तियाँ कौन सी हैं। इनकी गणना अगले छठे सूत्र में यूँ की है–

'प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः'

अर्थात् १-प्रमाण, २-विपर्यय, ३-विकल्प, ४- निद्रा, और ५-स्मृति ये पाँच चित्त की वृत्तियाँ है।

विषय का निर्णय करने के लिये केवल दो सूत्र पर्याप्त हैं जो इसी प्रसङ्ग के तीसरे और चौथे सूत्र हैं। तीसरा सूत्र योग की स्थिति का वर्णन इन शब्दों में करता है,

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' (३)। इस सूत्र से पहला सूत्र है **'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'** (२) जो योग को परिभाषित करता है कि चित्त की वृत्तियों को रोकना (निरोध) योग कहलाता है। चित्त की वृत्तियों के निरोध करने पर योगी की क्या स्थिति होती है उसका वर्णन यह वर्तमान सूत्र **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** (३) करता है कि (तदा) अर्थात् उस समय जब योगी चित्त की वृत्तियों का निरोध करता है तब योगी (द्रष्टुः) द्रष्टा अर्थात् परमेश्वर-परमात्मा एवं आत्मा के स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। पतञ्जलि मुनि ने इस सूत्र में प्रयुक्त **'द्रष्टुः'** अर्थात् द्रष्टा की परिभाषा भी साधनपाद अर्थात् योगदर्शन के दूसरे पाद के २०वें सूत्र में यूँ दी है–

'द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः'

अर्थात् द्रष्टा (दृशिमात्रः) केवल चेतनस्वरूप होता है, वह शुद्ध होते हुए भी अर्थात् केवल अपने स्वरूप वाला होते हुए भी, अपने से अतिरिक्त किसी अन्य (प्रकृति) से निर्लिप्त होते हुए भी (प्रत्ययानुपश्यः) बाह्य सांसारिक वस्तुओं की (प्रत्यय) प्रतीति के अनुसार देखता है अर्थात् अपने आप को बाह्य प्रतीति से भिन्न अनुभव नहीं कर पाता।

अतः पतञ्जलि मुनि के अनुसार द्रष्टा से अभिप्राय आत्मा से है, यह स्पष्ट है। प्रस्तुत सूत्र योगी की स्थिति चित्तवृत्तियों के निरोध के समय ऐसी होती है कि वह परमात्मा और आत्मा अर्थात् अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित होता है, उसे बाह्य वस्तुओं का आभास, जो चित्त की वृत्तियों की स्थिति में होता है, उनका आभास किञ्चित्मात्र भी नहीं होता, वह योग की स्थिति वृत्तियों=चित्त की वृत्तियों के अनुभव से सर्वथा शून्य होती है। यही तथ्य योगदर्शन के अगले सूत्र में स्पष्ट की है- **'वृत्तिसारूप्यमितरत्र'** (४), अर्थात् (इतरत्र) योग की स्थिति से भिन्न स्थिति में योगसाधक की स्थिति वृत्तियों=चित्त की वृत्तियों के अनुसार होती है। चित्त की वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं, अतः

योग की स्थिति से भिन्न अवस्था में साधक उन पांच चित्त की वृत्तियों में से किसी वृत्ति में अवस्थित होगा अर्थात् या तो वह प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम (शब्द प्रमाण) की अनुभूति कर रहा होगा, या प्रमाण के विपरीत विपर्यय स्थिति की अनुभूति में होगा, या विकल्प की स्थिति में होगा, या निद्रा की स्थिति में होगा और या स्मृति की अनुभूति की स्थिति में होगा। स्पष्ट है कि योग की स्थिति से भिन्न स्थिति किसी न किसी चित्त की वृत्ति में स्थिति की होगी। यदि साधक योगी चित्त की एक भी वृत्ति में स्थित है, चित्त की एक भी वृत्ति की अनुभूति कर रहा है तो वह तीसरे सूत्र में वर्णित **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** की स्थिति में नहीं है अर्थात् वह योग की स्थिति में नहीं है, अपितु चित्त की उस एक वृत्ति के सारूप्य में अवस्थित है जो योग की स्थिति से भिन्न है।

भाष्यकारों और व्याख्याकारों का ध्यान योगदर्शन के द्वितीय सूत्र (समाधिपाद) के **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** के द्वारा योग की परिभाषा देने के बाद योग की स्थिति का वर्णन करने वाले अगले सूत्र **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** और योग से भिन्न स्थिति का वर्णन करने वाले सूत्र **'वृत्तिसारूप्यमितरत्र'** पर नहीं होगा। यदि वे इन दोनों सूत्रों का तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन करते तो यह कदापि नहीं कहते या लिखते कि एक वृत्ति (चित्त वृत्ति) के रहते हुवे भी योग की परिभाषा लागू हो जाती है। चित्त की एक वृत्ति चित्त में रहने पर सम्प्रज्ञात समाधि तो कही जा सकती है, जिसकी परिभाषा इसी समाधि पाद के १७वें सूत्र में यूँ दी है-

'वितर्कविचारान्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः'

जिस स्थिति में वितर्क, विचार, आनन्द या अस्मिता में से किसी एक (या अनेक) वृत्ति का अनुगम होने की अनुभूति होती है, उस सम्प्रज्ञात समाधि जो योग की पूर्ण स्थिति है, की परिभाषा के अनुसार तो **'विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः'** सब वृत्तियों का अभाव हो जाता है, कोई चित्तवृत्ति नहीं रहती, चित्त में केवल संस्कारमात्र शेष रहते हैं।

सुधि विद्वज्जनों के समक्ष इतना ही कहने से विषय स्पष्ट हो जाता है, अधिक कहने या लिखने की आवश्यकता नहीं। वेदमूलकता के प्रमाण के रूप में निम्न मन्त्रखण्ड है:

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

यजुर्वेद ३१.१८।।

योगी की यह वैदिक स्थिति सभी चित्तवृत्तियों के निरोध के बिना नहीं हो सकती। यही द्रष्टा के स्वरूप में अवस्थान है। एव शब्द यहां किसी अन्य चित्तवृत्ति का अवकाश नहीं छोड़ता, केवल और केवल उस महान् पुरुष अर्थात् परमात्मा जिसका वर्णन मन्त्र के पूर्व भाग में करते हुए कहा है, **'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्'** उसी महान् पुरुष को ही जान कर, सभी चित्तवृत्तियाँ हटाकर उसी का प्रत्यक्ष अनुभव अपनी आत्मा में करके, अर्थात् उस के ही स्वरूप में अवस्थित हो कर मृत्यु से परे अर्थात् अमृत अवस्था, मोक्ष अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है, इस के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। इस वैदिक प्रमाण से यह स्पष्ट सिद्ध है कि सभी चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है, तभी द्रष्टा के स्वरूप में अवस्थान सम्भव है, अन्यथा योगी का अवस्थान उसी एक चित्तवृत्ति में रहेगा जिस का वह ध्यान कर रहा है, आत्मा या परमात्मा (द्रष्टा) के स्वरूप में अवस्थान कदापि नहीं हो सकेगा। योग से भिन्न स्थिति में वृत्तिसारूप्य रहेगा।

पश्चिम विहार, दिल्ली

परमेश्वर सगुण व निर्गुण है

परमेश्वर सगुण व निर्गुण दोनों प्रकार है। जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण है, कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें केवल निर्गुणता व केवल सगुणता हो। किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणोंसे सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।

(स.प्र.स.७)

ऋषि मेला – एक रिपोर्ट

१६, १७, १८ नवम्बर २०१८

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी महर्षि दयानन्द सरस्वती निर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य में परोपकारिणी सभा द्वारा भव्य ऋषि मेले का आयोजन किया गया। दूर-दूर से अनेक संन्यासी व विद्वान् इस ऋषि मेले में पधारे। जिनके उद्बोधन का लाभ देश-देशान्तर से पधारी आर्यजनता ने खूब उठाया। आर्यजनों की व्यवस्था तथा वहाँ होने वाली गतिविधियों को देखकर ऐसा लग रहा था कि जैसे ऋषि का डंका हर ओर बज रहा हो। श्रद्धालु आर्यजन अपने प्यारे ऋषिवर का ऋण चुकाने को आर्यावर्त्त के उस भू-खण्ड पर पधारे जहाँ कभी ऋषिवर की राख बिखेरी गयी थी। पवित्र वेदमन्त्रों की गूँज से प्रातः गुञ्जायमान होती थी। यह गूँज अरावली पर्वत शृंखला से टकराकर जब प्रतिध्वनि करती थी तथा आनासागर (जो कि एक विशाल झील है) पर अपनी तरंगें बिखेरती थी तो सचमुच दिव्य दृश्य होता था। इस पर भी विशाल प्रांगण में ओस से लदी घास पर आर्यों की चहल-पहल एक मनोरम दृश्य को पैदा करती थी। जिसे सूर्य भी प्राची से निकलकर देखने लगता था।

ऋषि मेले के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हुयीं, जिनका संक्षिप्त विवरण हम आगे की पंक्तियों में करेंगे।

ऋग्वेदपारायण महायज्ञ- ऋषि मेले से दो दिन पूर्व अर्थात् १४ नवम्बर २०१८ को ऋग्वेदपारायण महायज्ञ प्रारम्भ हुआ। जिसमें कि दो दिवसों तक आचार्य विद्यादेव जी (आचार्य महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान) ब्रह्मा रहे तथा महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान के ब्रह्मचारियों ने वेदपाठ किया तथा ऋषि मेला प्रारम्भ होने के बाद डॉ. विनय कुमार विद्यालङ्कार ब्रह्मा रहे तथा गुरुकुल शिवगंज से पधारी ब्रह्मचारिणियों ने वेदपाठ किया। इस महायज्ञ में परोपकारिणी सभा के सम्मानित सदस्य तथा बाहर से पधारे विशिष्ट महानुभाव यजमान बने तथा ऋषि मेले के अन्तिम दिन परोपकारिणी सभा के सदस्यों द्वारा पूर्णाहुति की गयी।

वेद-प्रवचन- ऋग्वेदपारायण महायज्ञ के तुरन्त बाद वेद-प्रवचन का कार्यक्रम होता था। जिसमें कि प्रथम दिवस गुरुकुल शिवगंज की आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा जी का उद्बोधन हुआ। द्वितीय दिवस डॉ. राजेन्द्र विद्यालङ्कार जी का उद्बोधन हुआ तथा तृतीय दिवस आचार्य विद्यादेव जी का उद्बोधन हुआ। इस कार्यक्रम के दौरान यज्ञशाला में तिलभर स्थान भी न बचता था तथा यज्ञशाला के बाहर भी आर्यजनता इन उपदेशों को सुनने के लिये भीड़ लगाकर खड़ी हो जाती थी।

ध्वजारोहण- इस कार्यक्रम का स्थल सरस्वती भवन (महर्षि दयानन्द संग्रहालय) के बाहर का प्रांगण था, जहाँ आर्यजनता पंक्तिबद्ध होकर खड़ी हो गयी थी। जनता के सम्मुख परोपकारिणी सभा के सदस्य तथा संन्यासी व विद्वान् खड़े थे। कार्यक्रम की शुरुआत ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्रों से हुयी। तत्पश्चात् परोपकारिणी सभा के प्रधान डॉ. सुरेन्द्र जी व परोपकारिणी सभा के वरिष्ठ सदस्य प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु ने ध्वजारोहण किया। श्रद्धापूर्वक ध्वजगीत का गान किया गया। यहीं डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का उद्बोधन हुआ जहाँ उन्होंने इस त्रिदिवसीय ऋषि मेले के शुभारम्भ की घोषणा की तथा ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों व उद्देश्यों पर भी प्रकाश डाला। श्री ओममुनि जी ने समस्त आर्यजनता का मेले में पधारने के लिये धन्यवाद ज्ञापित किया। इस पूरे कार्यक्रम का संचालन श्री सोहनलाल कटारिया जी ने किया।

विभिन्न सत्र- इन तीन दिवसों में ९ सत्र हुये अर्थात् एक दिन में तीन सत्र। प्रथम सत्र १०:३० से १२:३० तक तथा द्वितीय सत्र २:०० से ५:०० तक तथा तृतीय सत्र रात्रि ८:०० से १०:०० तक हुआ। जिनके विषय क्रमशः ये थे।

१- वर्तमान में गुरुकुलों की प्रासंगिकता

२- महिला उत्थान और आर्यसमाज

३- वेद में राष्ट्र की अवधारणा-

४- आचार्य धर्मवीर वेदप्रचार सम्मेलन-

५- मानव निर्माण में योग की भूमिका

६- पुनर्जागरण आन्दोलन और महर्षि दयानन्द

७- विश्वकल्याण और आर्यसमाज

८- समाज सुधार में युवाओं की भूमिका

९- समापन सत्र- श्री ओममुनि द्वारा किया गया।

ऋषि मेले में अनेक विद्वान् पधारे थे, जिनके कि इन सत्रों में व्याख्यान आदि हुये। यथा- आचार्य विद्यादेव, आचार्य विजयपाल, आचार्य ओमप्रकाश, आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा, डॉ. वरुणवीर, आचार्या प्रियंवदा वेदभारती, श्री रामनिवास 'गुणग्राहक', डॉ. विनय विद्यालङ्कार मास्टर रामपाल, श्री शत्रुघ्न आर्य, डॉ. राजेन्द्र विद्यालङ्कार, श्री जगदीश शर्मा, श्री दीनदयाल गुप्त, डॉ. जगदेव आर्य, ओममुनि, श्री अरुण कुमार आर्यवीर, आचार्या धारणा 'याज्ञिकी', स्वामी ऋतस्पति, डॉ. वेदपाल, आचार्य विरजानन्द दैवकरणि, श्री कन्हैयालाल आर्य, डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी, डॉ. सोमदेव शतांशु, पं. भूपेन्द्र सिंह तथा पं. लेखराज आदि। इन्हीं सत्रों के अन्तर्गत विद्वानों के सम्मान भी हुये मेले में म्यांमार से छह महिला प्रतिनिधि भी पधारीं, जिन्होंने विभिन्न सत्रों में अपने सुमधुर भजनों से उत्सव की शोभा बढ़ाई। जो कि निम्नलिखित है-

१- डॉ. मुमुक्षु आर्य आर्ष पाठविधि पुरस्कार- डॉ. सोमदेव शतांशु

२- श्री रघुवीर सिंह सुधारक वेदोपाध्याय पुरस्कार- आचार्य विद्यादेव

३- विश्वकीर्ति आर्ययुवा कार्यकर्ता पुरस्कार- श्री धर्मेन्द्र जिज्ञासु

४- दीपचन्द आर्य धर्मार्थ न्यास पुरस्कार- आचार्य विजयपाल

५- स्वामी देवेन्द्रानन्द वैदिक धर्मप्रचारक पुरस्कार- ब्रह्मचारी राजेन्द्रार्य (फरीदाबाद)

६- स्वामी आशुतोष आर्ष अध्यापक पुरस्कार- ब्रह्मचारी अरुणकुमार आर्यवीर

७- श्रीमती सुमनलतादेव आर्य कार्यकर्ता पुरस्कार- पं. रामनिवास गुणग्राहक

८- डॉ. प्रियव्रतदास वेदवेदांग पुरस्कार- डॉ. प्रियम्वदा वेदभारती

९- श्रीमती कुसुम कृष्ण स्मृति वेद-प्रचार पुरस्कार- मास्टर रामपाल आर्य

१०- श्रीमती कमला देवी नवाल धर्मपत्नी श्री मथुराप्रसाद नवाल आर्य विदुषी सम्मान- आचार्या शीतल

११- श्री मथुराप्रसाद नवाल आर्य विद्वत् सम्मान- आचार्य सत्यप्रिय आर्य

१२- श्री वृद्धिचन्द ईनाणी आर्ष छात्रवृत्ति- ब्रह्मचारी ज्ञाननिष्ठ

१३- श्रीमती सुगनी देवी ईनाणी आर्ष छात्रवृत्ति- ब्रह्मचारी प्रणव

इन्हीं सत्रों के अन्तर्गत अनेक पुस्तकों का विमोचन भी किया गया। परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पण्डित लेखराम कृत कुल्लियाते आर्य मुसाफिर के प्रथम भाग का विमोचन किया गया। जिसका सम्पादन प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु ने किया है। सिर्फ ऋषि मेले के लिये इस पुस्तक की कीमत में भी छूट दी गयी।

वेद कण्ठस्थीकरण प्रतियोगिता- अनेक गुरुकुलों व कन्या गुरुकुलों से आये छात्र व छात्राओं ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया। निर्णायकों के निर्णय के अनुसार प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले को पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया तथा ऋषि दयानन्द की पुस्तकों का एक-एक सेट भी भेंट किया गया। इस प्रतियोगिता के निर्णायक आचार्य विद्यादेव, आचार्य ओमप्रकाश तथा आचार्य ज्ञानेन्द्र रहे।

आर्ष पुस्तक बाजार- विशाल मैदान में एक ओर पुस्तकों का बाजार लगा हुआ था। जहाँ पहली स्टॉल परोपकारिणी सभा के प्रकाशन 'वैदिक पुस्तकालय' की थी तथा अन्य भी अनेक प्रकाशन पधारे हुये थे, यथा- हितकारी प्रकाशन, हिण्डौन सिटी, गोविन्दराम हासानन्द, अमरस्वामी प्रकाशन आदि। यह बाजार तीनों दिन भीड़ से भरा रहा। पुस्तकों की बिक्री को देखकर ऐसा लग रहा था कि आर्य जनता में स्वाध्याय के प्रति अत्यधिक प्रेम है। इस बाजार में पुस्तकों के अतिरिक्त भी कुछ दुकानें थी। जिन पर ओषधियाँ तथा यज्ञ से संबन्धित सामान बिक रहा था तथा स्वामी दयानन्द व अन्य महापुरुषों के चित्र भी बिक रहे थे।

ऋषि लंगर- ऋषि मेले में पधारी हजारों की संख्या में आर्यजनता को परोपकारिणी सभा द्वारा निःशुल्क आवास

व भोजन की व्यवस्था दी जा रही थी। भोजन की व्यवस्था को दो भागों में बाँटा गया था। यह लंगर बड़ा ही व्यवस्थित था। लोग पंक्तिबद्ध होकर भोजन करने जाते थे।

आर्यवीर दल- ऋषि मेले के अन्तर्गत आर्यवीरों का भी खूब सहयोग रहा। आवास व्यवस्था आदि में श्री पंकज आर्य, डॉ. विश्वास पारीक व उनके आर्यवीरों ने खूब बढ़-चढ़कर काम किया। मेले के दूसरे दिन आर्यवीर दल का कार्यक्रम हुआ। जिसमें आर्यवीरों व वीरांगनाओं ने अपने करतबों से जनता का मन मोह लिया।

वेदगोष्ठी- प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी वेदगोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में देश-देशान्तर से आये विद्वान् व विदुषियों ने पत्र-वाचन किया तथा प्रश्नोत्तर व शङ्का-समाधान भी किया। गोष्ठी का संयोजन डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी के निर्देशन में श्री सोमेश पाठक ने किया। यह गोष्ठी चार सत्रों में पूर्ण हुई। गोष्ठी का उद्घाटन डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने किया। प्रथम सत्र की अध्यक्षता श्री अरुणकुमार आर्यवीर ने की। द्वितीय सत्र में अध्यक्ष डॉ. सोमदेव शतांशु तथा मुख्य अतिथि स्वामी ऋतस्पति जी रहे। तृतीय सत्र के अध्यक्ष आचार्य विद्यादेव जी तथा मुख्य अतिथि आचार्या सूर्यादेवी जी रहीं। चतुर्थ सत्र के अध्यक्ष डॉ. विनय विद्यालङ्कार तथा मुख्य अतिथि डॉ. प्रियंवदा वेदभारती जी रहीं। गोष्ठी में लगभग ३० निबन्ध पढ़े गये। जिनके प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्थान का निर्णय अगले वर्ष किया जायेगा। समय-समय पर अन्य विद्वानों के उपदेशों का लाभ भी मिलता रहा। यथा डॉ. वेदपाल, श्री कन्हैयालाल आर्य, आचार्या सूर्यादेवी आदि।

इस मेले को सफल बनाने में अनेक लोगों का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सहयोग रहा। परोपकारिणी सभा के कार्यालय के कार्यकर्ता तीनों दिन वहीं उपस्थित रहे तथा उन्होंने अनथक परिश्रम किया। श्री वासुदेव आर्य, श्री अशोक आर्य (ब्यावर), श्री मुमुक्षु मुनि, श्री रमेश मुनि, श्री सुरेन्द्र, श्री विजय गहलोत, श्री हिम्मत सिंह, श्री रामकिशन आदि, गुरुकुल झज्जर तथा गुरुकुल आबू के विद्यार्थी, गुरुकुल ऋषि उद्यान के निष्ठावान् स्नातक श्री योगेन्द्र, श्री लक्ष्यवीर, श्री प्रभाकर, श्री सोमेश ने दिन-रात एक करके परिश्रम किया। इस पूरे कार्यक्रम की व्यवस्था सभा के स्थानीय न्यासी डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा, डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी', श्रीमती जयोत्स्ना 'धर्मवीर' व श्री ओममुनि जी के अनथक परिश्रमपूर्वक नेतृत्व में सम्पन्न हुयी।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द के १३५ वें निर्वाणोत्सव का आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

ईश्वर अवतार नहीं लेता

जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है उसके सामने कंस, रावणादि राक्षस एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक होने से उन कंस, रावणादि राक्षसों के शरीर में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है।

भक्तजनों के उद्धार करने के लिए भी वह अवतार नहीं लेता क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। पृथिवी, सूर्यादि, जगत् की उत्पत्ति, धारण और प्रलय जो ईश्वर के बड़े कर्म हैं उनके सामने रावणादि का वध एक साधारण एवं नगण्य कर्म है।

परमात्मा के अनन्त सर्वव्यापक होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहाँ हो सकता है जहाँ न हो। क्या परमेश्वर वह गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? इसलिए परमेश्वर का आना-जाना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता। राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, दुःख, सुख, जन्म, मरण आदि गुण मनुष्य के हैं, ईश्वर के नहीं।

(स.प्र.स. ७)

जय हो युग निर्माता स्वामी

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

जय ऋषियों के राज दुलारे।
जय जय साहस के अंगारे।।
जय कल्याण-मार्ग अनुगामी।
जय निर्बल के सबल सहारे।।
जय हो यतिवर जय संन्यासी।
जय हो भक्त प्रभु के प्यारे।।

जय जन नायक जय बलिदानी।
जय योगेश्वर प्यारे न्यारे।।
जय निर्भीक निपुण जननायक।
जय जय जाति के रखवारे।।
जय गुनियों के गौरव स्वामी।
जय हो आशा के उजियारे।।

जय त्रसितों के त्राण मुनिवर।
जय जय हो अभिमान हमारे।।
जय गोरों से लड़ने वाले।
जय नर नाहर जोगी प्यारे।।

दयानन्द फिर आजा, देश के आर्य बुलाए रे!

चन्द्रप्रकाश भटनागर 'चांद'

दयानन्द फिर आजा, देश के आर्य बुलाए रे!
दयानन्द फिर आजा, जगत के आर्य बुलाए रे!!
तूने आर्यसमाज बनाया, अन्तर्जातिया विवाह कराया,
पिछड़ों को भी पास बुलाकर गले लगाजा रे।
दयानन्द फिर आजा...!!

विरजानन्द सा गुरु बताजा, श्रद्धानन्द सा कोई बनाजा,
'ओ३म्' पताका घर-घर तू खुद फहराजा रे!
दयानन्द फिर आजा...!!

लड़ी थी तूने बड़ी लड़ाई, 'स्वराज्य' की तूने नींव लगाई,
'क्या हम हैं स्वतन्त्र?' हमें तू यह समझा जा रे!
दयानन्द फिर आजा...!!

आजा तेरा घर है खाली, कोई यहाँ नहीं है माली,
सजे-सजाए घर में आकर दीप जलाजा रे!
दयानन्द फिर आजा...!!

तू चुप-चाप मेरे घर आजा, मुझ को अपना राग सुनाजा,
'पाखण्ड-खण्डिनी-पताका' को तू फिर फहराजा रे!
दयानन्द फिर आजा...!!

माता का कर्त्तव्य

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करें, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगें तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करें कि जो जिस वर्ण का स्थान-प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, स्वर, अक्षर, मात्रा, पद वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की शिक्षा करें, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करे वैसे प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है, इससे उसका स्पर्श न करें। (स. प्र. द्वि. स.)

जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि, पुष्टि, मधुरता, रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल, अग्नि के बीच में उनका होम कर, शुद्ध वायु, वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन करके शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं। - **महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५८**

महर्षि दयानन्द सरस्वती के १३५ वें बलिदान समारोह (ऋषि मेला) के अवसर पर
ध्वजारोहण करते हुए कार्यकारी प्रधान डॉ. सुरेन्द्र कुमार

आर जे/ए जे/80/2018-2020 तक प्रेषण : ३० नवम्बर २०१८ आर.एन.आई. ३९५९/५९

परोपकारिणी सभा की नवनिर्वाचित कार्यकारिणी

डॉ. वेदपाल
प्रधान

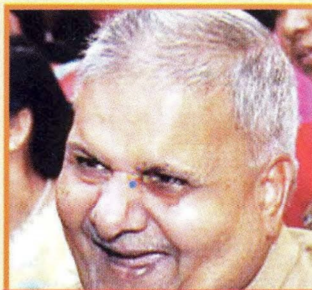

श्री गजानन्द आर्य
संरक्षक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार
संरक्षक

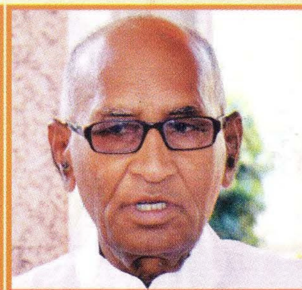

श्री ओममुनि
उपप्रधान

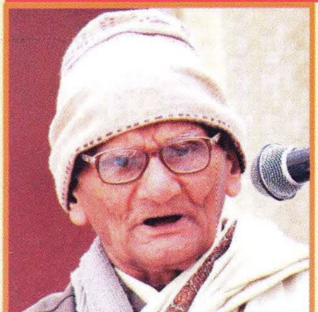

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
उपप्रधान

श्री शत्रुघ्न आर्य
उपप्रधान

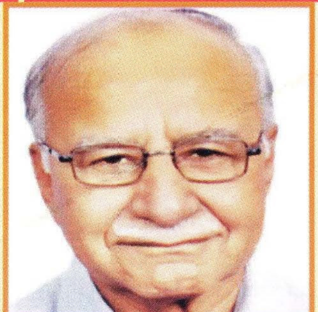

श्री कन्हैयालाल आर्य
मंत्री

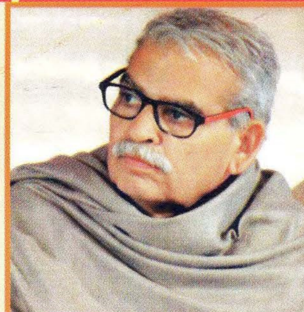

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा
संयुक्त मंत्री

श्री सुभाष नवाल
कोषाध्यक्ष

श्रीमती ज्योत्स्ना 'धर्मवीर'
पुस्तकाध्य

डॉ. राजेन्द्र 'विद्यालंकार'

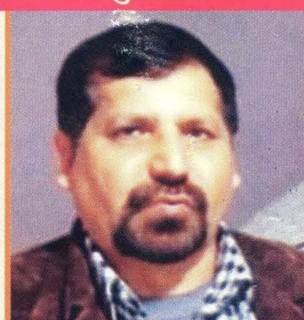

श्री वीरेन्द्र आर्य
अन्तरंग सदस्य

प्रेषक:
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१